सीता-वनवास

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

सीता-वनवास

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-कृत 'सीतार वनवास'

का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

पण्डित रामजीलाल शर्म्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१९

पञ्चम वृत्ति]

[मूल्य ॥)

सूचीपत्र

भूमिका

स्वनामधन्य पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम से भारतवर्ष का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति परिचित है। आपकी जन्मभूमि—बंगाल—के क्या शिक्षित क्या अशिक्षित, क्या स्त्री क्या पुरुष, आबालवृद्धवनिता सभी लोग आप के गुणों पर मोहित होकर आपकी सुकीर्ति का गान आज तक कर रहे हैं।

इन्हीं विद्यासागर महाशय ने वङ्गभाषा में "सीतार वनवास" नाम की एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक की उत्तमता का अनुमान पाठक इसी से कर सकते हैं कि आज तक इसके पचासों संस्करण छपे हैं और लाखों कापियाँ बिक चुकी हैं। बंगाल की टैक्स्ट बुक कमेटी ने इस पुस्तक को अपने प्रान्त की स्कूली पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित कर रक्खा है। बंगाल में शायद ही कोई घर ढूँढ़ने से ऐसा निकले जहाँ "सीतारवनवास" की कम से कम एक भी कापी न हो। बंगाल में प्राय: कोई पढ़ा लिखा मनुष्य ऐसा न निकलेगा जिसने यह पुस्तक न पढ़ी हो।

वास्तव में "सीतार वनवास" की जितनी प्रशंसा और प्रतिष्ठा की जाय उतनी ही कम है। इस पुस्तक में प्रत्येक विषय ऐसी उत्तमता से वर्णित किया गया है कि पढ़ते समय प्रत्येक

घटना का चित्र सा खड़ा हो जाता है। इसे कारुण्य रस का सागर समझिए। यह असम्भव है कि इसके पढ़नेवाले के नेत्रों से अश्रुजलधारा न बह निकले। इसके पढ़ने से पाषाण-हृदय भी पिघल कर मोम हो जाता है।

पाठक अनुमान कर सकते हैं कि ऐसी उत्तम पुस्तक के हिन्दी भाषा में अनुवाद की कितनी आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए, इस पुस्तक का "सीता-वनवास" नामक हिन्दी-अनुवाद तैयार किया गया है। यदि हिन्दी और हिन्दी-भाषा-भाषी महाशयों को इस पुस्तक से कुछ भी लाभ पहुँचा तो हम अपने श्रम को सफल समझेंगे।

अनुवादक

पहला परिच्छेद

श्री रामचन्द्रजी महाराज राजगद्दी पर बैठ कर अकंटक राज्य करने लगे और पुत्र के समान प्रजा का पालन करने लगे। उनके सुशासन के प्रताप से सारा कोशल-राज्य सुख और धन से परिपूर्ण हो गया। सारांश यह कि श्रीरामचन्द्रजी के राज्य करते समय प्रजा को जैसा सुख-चैन मिला वैसा और किसी राजा के शासन-काल में नहीं मिला। वे प्रतिदिन नियत समय पर अपने मन्त्रियों के साथ बैठ कर ख़ूब जी लगा करके राज-काज की देख भाल किया करते थे। उससे जो समय मिलता था उसे वे अपने

भाइयों और जनकदुलारी के साथ बातचीत करने में बिताते थे। इसी तरह, कुछ दिन बीतने पर श्रीजानकीजी के गर्भ-चिह्न प्रकट हुआ। यह जान कर श्रीरामचन्द्रजी और राम-जननी कौशल्या को बड़ा ही आनन्द हुआ। इस आनन्द-समाचार को सुन कर सारा राजभवन उत्सव से पूर्ण हो गया। अयोध्या-वासी लोग, जल्द राजकुमार का दर्शन पाने की आशा में, मारे ख़ुशी के अपने अपने घरों में अनेक प्रकार के आनन्द-उत्सव करने लगे।

कुछ दिन बाद महर्षि ऋष्यश्रृङ्ग ने अपने यहाँ एक यज्ञ करना आरम्भ किया। उसमें उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को, परि-वार-सहित बुलाने के लिए, निमन्त्रण भेजा। उस समय जानकीजी के सन्तान होने वाली थी। इसलिए सीताजी और उनके कहने से श्रीरामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी भी उनके यज्ञोत्सव में न जा सके। केवल कौशल्या आदि बूढ़ी रानियाँ वशिष्ठ और अरुन्धती के साथ अपने जामाता—जमाई—के यज्ञ में गईं। यद्यपि वे लोग भी ऐसे समय में जानकीजी को घर में छोड़ कर जाना नहीं चाहते थे, तथापि जामाता का निमन्त्रण टालना उचित न समझ कर उन्हें उस यज्ञोत्सव में जाना ही पड़ा।

इस घटना के कुछ दिन पहले राजा जनक अपने जामाता और पुत्री—राम-जानकी—को देखने के लिए अयोध्या आये थे। कौशल्या आदि के यज्ञोत्सव में चले जाने के बाद ही वे

मिथिला को लौट गये । इस कारण, पहले तो सासुओं से बिछोह हुआ और फिर तत्काल ही अपने पिता से जुदा होने पर जानकीजी शोक से बड़ी अधीर हुईं । पूर्ण गर्भ की अवस्था में स्त्रियों को शोक-मोह आदि से बहुत बड़ी हानि हो जाने की शंका रहती है इसलिए श्रीरामचन्द्रजी, सब काम छोड़ कर सीताजी को धीर बँधाने के लिए, बहुत करके उनके पास ही रहा करते थे ।

एक दिन श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के पास बैठे थे । इतने में ही एक ड्योढ़ीवान ने आकर बड़ी नम्रता से निवेदन किया—"महाराज, महर्षि ऋष्यश्रृङ्ग के आश्रम से समाचार लेकर अष्टावक्र मुनि आये हैं ।" यह सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी ने चकित होकर कहा कि उनको तुरन्त यहाँ बुला लाओ । ड्योढ़ीवान वहाँ से जाकर अष्टावक्र मुनि को अपने साथ लिवा लाया । "चिरञ्जीव हो" कह, अष्टावक्र मुनि ने हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया । श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी ने मुनि को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन बिछा दिया । जब मुनि बैठ गये तब श्रीरामचन्द्रजी पूछने लगे—"भगवान् ऋष्यश्रृङ्ग तो कुशल-पूर्वक हैं ? उनका यज्ञकार्य तो निर्विघ्न पूरा हो रहा है ?" सीताजी भी पूछने लगीं—"क्योंजी, भला मेरे गुरुजन और आर्या शान्ता आदि सब अच्छे तो हैं ? वे लोग हमें कभी स्मरण भी करते हैं या नहीं ?" ।

इस तरह पूछने पर मुनि ने सब का कुशल-समाचार सुना कर जानकीजी से कहा—"देवि, भगवान् वशिष्ठ देव ने आप को कहा है कि भगवती विश्वम्भरा देवी ने तुम्हें पैदा किया है। साक्षात् प्रजापति राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। तुम सबसे प्रधान कुल की वधू हुई हो। तुम्हारे लिए अब क्या प्रार्थना करूँ? मैं केवल रात दिन यही मना रहा हूँ कि तुम वीर-प्रसव करो।" यह सुन कर सीताजी मारे लज्जा के कुछ संकुचित हुईं। श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहने लगे कि यदि गुरु वशिष्ठ देव ऐसा आशीर्वाद देते हैं तो अवश्य हमारा मनोरथ पूर्ण होगा। फिर अष्टावक्र मुनि ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा—"महाराज, भगवती अरुन्धती देवी ने, आपकी माताओं ने और श्रीमती शान्ता ने बार बार कह दिया है कि सीतादेवी जब जिस वस्तु की इच्छा करें तब वह वस्तु उन्हें देकर उनकी इच्छा पूरी की जाय।" श्रीरामचन्द्रजी ने उत्तर दिया—"आप उन लोगों से मेरा प्रणाम कह कर कहिएगा कि ये जिस समय जो चाहती हैं क्षणमात्र में वह वस्तु मँगा दी जाती है। इसमें मेरी ओर से एक पल की भी देरी या ढील नहीं होती।"

अष्टावक्र ने कहा—"देवि जानकि, भगवान् ऋष्यशृङ्ग ने बड़े आदर और प्रेम के साथ कहा है कि बेटी, तुम्हारे इस समय पूर्ण-गर्भ होने के कारण मैं तुमको बुला नहीं सका, इसलिए तुम मुझ पर क्रोध न करना। और, रामचन्द्र और

लक्ष्मण को भी तुम्हारे जी लगने के ही लिए रखना पड़ा है। इस यज्ञ के पूर्ण होते ही हम लोग अयोध्या जाकर तुम्हारी गोद नवकुमार से सुशोभित देखेंगे।" यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हर्षित हो, मुसकराते हुए अष्टावक्र से पूछने लगे—"मेरे लिए भगवान् वशिष्ठजी ने क्या आज्ञा की है?" अष्टावक्र ने उत्तर दिया—"महाराज वशिष्ठ देव ने आपको यह कहा है कि बेटा, जामाता के यज्ञ में हम लोग रुके हुए हैं, और कुछ दिन तक यहाँ अभी और रुकना पड़ेगा। तुम अभी अल्पायु हो। तुम्हें गद्दी पर बैठे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। देखना, प्रजा को सदा सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करना। प्रजा के प्रसन्न होने से जो उज्ज्वल कीर्ति पैदा होती है वही रघुवंशियों का परम धन है।" यह सुन श्रीरामचन्द्रजी ने उत्तर में कहा—"मैं गुरुजी की इस आज्ञा से बड़ा ही अनुगृहीत हुआ। उनकी आज्ञा और उपदेश मुझे सदा शिरोधार्य है। आप उनके चरणारविन्दों में मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन कर के कहिएगा कि प्रजा को सब प्रकार से प्रसन्न करने के लिए चाहे मुझे दया, स्नेह या सुख-भोग छोड़ना पड़े, चाहे प्यारी जानकी को भी त्याग देना हो, तो भी मैं प्रजापालन में तिल भर भी त्रुटि न करूँगा। वे इस बात के लिए सर्वथा निश्चिन्त रहें। मैं प्रजा के प्रसन्न करने में एक पल के लिए भी निश्चिन्त नहीं हूँ।" यह सुन कर सीताजी बड़ी प्रसन्न हुईं। वे कहने लगीं कि ऐसा न होता तो सारा संसार आपको रघुकुल-धुरन्धर कैसे समझता?

बातचीत कर चुकने के बाद अष्टावक्र मुनि के ठहराने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने पास ही बैठे हुए एक सेवक को आज्ञा दी। अच्छी तरह बातचीत करके और आशीर्वाद दे कर विश्राम करने के लिए मुनि वहाँ से चल दिये। उनके चले जाने पर श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी आपस में बातचीत करने लगीं। इतने में ही लक्ष्मणजी ने आकर कहा—आर्य, मैंने एक चित्र-कार से आपका चरित्र चित्रित करने के लिए कहा था, सो वह यह चित्रपट तैयार करके लाया है। लीजिए, इसे देखिए। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—वत्स, देवी का चित्त व्याकुल होने पर किस तरह इनका मन प्रसन्न करना चाहिए—इसे तुम खूब समझते हो। अच्छा, यह तो बताओ कि इस चित्रपट पर कब तक का चरित्र अङ्कित किया गया है? लक्ष्मणजी ने कहा—आर्या सीताजी की अग्नि-परीक्षा तक का।

यह सुन कर श्रीरामचन्द्रजी का मन मलिन हो गया। उन्होंने कहा—"वत्स, तुम हमारे सामने फिर यह बात न कहना। मैथिली की अग्नि-परीक्षा की बात सुनने या स्मरण करने से मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है। कैसी भद्दी बात है! जिसके जन्म लेने से सारा जगत् पवित्र हो रहा है उसी की पवित्रता की परीक्षा हमने दूसरी तरह से कराई! हा! संसार का प्रसन्न करना—लोकाचार—भी कैसा कठिन काम है!" यह सुन सीताजी ने कहा—"नाथ, आप उन बातों को याद करके अब क्यों दुखी हो रहे हैं? आपने उस समय जो कुछ

किया सो ठीक ही किया था। वैसा न करते तो रघुकुल का निर्मल यश कलङ्कित हो जाता और मेरे सिर से भी बुराई दूर न होती।" सीताजी की बात सुन कर श्रीरामचन्द्रजी लम्बी साँस खींच कर कहने लगे—प्यारी, जाने दो इन बातों को; आओ, चित्र को देखें।

सब चित्र देखने लगे। इधर उधर देख कर सीताजी ने पूछा—"नाथ! इस चित्र के ऊपर की ओर यह सब क्या बना हुआ है?" श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"यह सब जो तुम ऊपर देख रही हो, मन्त्रमय बाणों का समूह है। ब्रह्मा आदि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वेद की रक्षा के लिए, चिरकाल तक तप करके, इन तपोमय और तेजस्वी अस्त्रों को प्राप्त किया था। कुल-परम्परा की रीति से भगवान् कुशाश्व (विश्वामित्र के गुरु) के पास जाकर विश्वामित्रजी ने यह सब अस्त्र-विद्या सीखी थी। परमकृपालु श्रीविश्वामित्रजी ने ताड़का के मारने के समय यह सब विद्या हमें पढ़ाई थी। तब से यह विद्या हमारे ही पास है। जब तुम्हारे पुत्र होगा तब यह विद्या हम उसे पढ़ावेंगे।"

लक्ष्मणजी ने कहा—देवि, इधर मिथिला की सब घटनाएँ खिंची हुई हैं; इन्हें देखिए। उसे देख कर, बड़ी प्रसन्न होकर सीताजी ने कहा—हाँ बना तो ठीक! जैसे आर्यपुत्र (श्रीराम-चन्द्रजी) शिव-धनुष को उठा कर उस पर जेह चढ़ाने का उद्योग कर रहे थे और हमारे पिता आश्चर्य में होकर निर्निमेष दृष्टि

से देख रहे थे वैसा ही—ठीक उसी तरह का—यह चित्र बना है। अहा! कैसा बढ़िया चित्र है! कैसा अच्छा चमत्कार दिखाया है! यह हमारे विवाह-काल की सभा है। यह विवाह-मण्डप है। उसी सभा में ये आपके चारों भाई बैठे हैं। ठीक उसी समय की वेष-भूषा से सजे हुए ये कैसे सुहावने लगते हैं! कैसी अच्छी शोभा हो रही है! चित्र देखने से मालूम होता है, मानो वही जगह और वही समय है। यह सुन कर और मन में पहली बातों की याद आजाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये! ठीक कहती हो। जिस समय महर्षि शतानन्द (राजर्षि जनक के कुल-गुरु) ने तुम्हारा कोमल कर-कमल मेरे हाथ में समर्पण किया था, उस समय का सब दृश्य यहाँ ठीक दिखलाया गया है।

उस चित्रपट पर एक जगह उँगली रख कर लक्ष्मणजी ने कहा—यह आर्या (आप) हैं, यह आर्या माण्डवी हैं और यह वधू श्रुतकीर्त्ति है। किन्तु उन्होंने लज्जा के कारण अपनी अर्धाङ्गिनी ऊर्मिला को नहीं बताया। सीताजी समझ गईं। कौतुक के लिए, मुसकुराहट के साथ, ऊर्मिला की मूर्ति की ओर उँगली उठा कर उन्होंने लक्ष्मण जी से पूछा—वत्स, इधर यह क्या है? यह किसकी मूर्त्ति है? लक्ष्मणजी ने इसका कुछ उत्तर न दे हँस कर कहा—देवि! देखिए, देखिए, इधर शिव-धनुष का टूटना सुन कर क्षत्रिय-कुल-नाशक भगवान् परशुरामजी क्रोध में भरकर हमारे अयोध्या के मार्ग पर कैसे खड़े हैं। और, इधर देखिए, लोकविजयी आर्य (श्रीरामचन्द्रजी)

उनका अभिमान खण्डन करने के लिए बाण चढ़ाये कैसे तने खड़े हैं। अपनी प्रशंसा सुन कर श्रीरामचन्द्रजी कुछ लज्जित हुए। इसलिए उन्होंने कहा—लक्ष्मण, इस चित्र में और बहुतसी अच्छी बातें दिखलाने की हैं। तुम इसी बात को क्यों दिखा रहे हो? सीताजी श्रीरामचन्द्रजी की बात सुन कर प्रसन्न होकर बोलीं—नाथ, ऐसा न हो तो सारा संसार आपकी ऐसी प्रशंसा क्यों करे?

इसके बाद अयोध्या में प्रवेश करते समय का दृश्य सामने दिखाई पड़ा। उसे देखते ही श्रीरामचन्द्रजी की आँखें डबडबा आईं। वे गद्गद् होकर कहने लगे—हमारे विवाह होजाने के बाद कैसे आनन्द-उत्सव में दिन बीते थे। श्रीपिताजी को कितना आनन्द मिला था, कितना सुख मिला था; श्रीमती माताएँ नवीन वधुओं को पाकर कितनी आनन्दित हुई थीं, कितनी प्रफुल्लित हुई थीं; सदा उनमें कितनी ममता रखती थीं, कितना प्रेम करती थीं। सारा राजमहल आनन्द और उत्सव से भर गया था। हाय! वे दिन कैसे आनन्द और उत्सव में बीते थे। फिर लक्ष्मणजी ने कहा—यह रही मन्थरा। मन्थरा का नाम सुन कर श्रीरामचन्द्रजी बड़े उदास हुए। उधर दृष्टि और मन न देकर, दूसरी ओर निगाह डाल कर बोले—प्रिये, देखो देखो, शृङ्गवेरपुर में जिस इंगुदी के वृक्ष के तले प्यारे बन्धु निषादराज के साथ भेट हुई थी, वह दृश्य कैसा अच्छा चित्रित हुआ है।

सीताजी देख कर और प्रसन्न होकर बोलीं—नाथ, यहाँ जटा

बाँधने और चीर पहनने का दृश्य देखिए। लक्ष्मणजी ने तनिक ताने से कहा—इक्ष्वाकुवंशियों में यह नियम चला आता था कि बुढ़ापे में राजा बेटे को राज्यभार सौंप कर वन में तपस्या करने जाया करते थे; परन्तु आर्य को बालकपन में ही कठोर वनवास भोगना पड़ा। फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी से कहा—आर्य, महर्षि भरद्वाज ने हमारे लिए चित्रकूट का रास्ता बताते समय जिस बड़ के पेड़ की बात कही थी, यह वही पेड़ है। तब सीताजी बोलीं—क्यों नाथ, यहाँ की बात याद है? श्रीरामचन्द्र ने कहा—प्रिये, उसे क्योंकर भूल सकते हैं? इसी जगह, मार्ग चलने के श्रम से थक कर, तुम मेरी छाती पर सिर रख सोई थीं।

किसी दूसरी ओर उँगली उठा कर सीताजी ने कहा—नाथ, देखिए तो, इधर हमारे दक्षिणी वन में घुसते समय का कैसा सुन्दर दृश्य बनाया है। मुझे याद पड़ता है, इसी जगह जब मैं कड़ी धूप के लगने से व्याकुल होगई थी तब आपने अपने हाथ से ताल के पत्ते को मेरे सिर के ऊपर करके छाया की थी। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, यह सब पहाड़ी नदियों के तट पर तपोवन है। इसी तपोवन के वृक्षों के नीचे गृहस्थ-आश्रमवासी लोग वानप्रस्थ-धर्म में तत्पर होकर कैसे आनन्द में अपना कर्तव्य पाल रहे थे। लक्ष्मणजी ने कहा—आर्य! यही जनस्थानवाला प्रस्रवण नामक पर्वत है। इस पर्वत की ऊँची चोटियों पर सदा बादल फिरते रहने से इसका कैसा नीला नीला

रंग दिखाई दे रहा है। वनवृक्षों की सघनता से यहाँ का स्थान कैसा सुहावना, ठंडा और रमणीक है। इसी के नीचे निर्मल-जल-भरी गोदावरी कैसे प्रबल वेग से बही चली जा रही है। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, तुम्हें याद है, इस जगह हम तुम कैसे मगन होकर कुटी में बैठे थे और लक्ष्मण खाने के लिए फल खोजते फिरते थे। इसी गोदावरी के तीर पर हम तुम सब टहला करते थे। टहलते हुए शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन कैसा भला मालूम हुआ करता था। हाय! उस दशा में भी हम कैसे सुख में समय बिताते थे!

लक्ष्मणजी उस चित्र में एक जगह उँगली रख कर बोले—यह पञ्चवटी है और यह शूर्पणखा है। सीताजी भोली भाली तो थीं हीं, शूर्पणखा और पञ्चवटीवाले दृश्य को देख कर और वही पुराना समय आया समझ कर उदास सी होकर कहने लगीं—हा नाथ! इतना ही देखना सुनना बस है। श्रीरामचन्द्रजी ने समझते हुए हँस कर कहा--आर्य-विरहभीते! यह तो चित्रपट है। वास्तव में पञ्चवटी और पापिन शूर्पणखा नहीं है। इधर उधर देख कर लक्ष्मणजी बोले—कैसा आश्चर्य है! इस चित्र के देखने से जनस्थान की बातें कैसी प्रत्यक्ष सी दिखाई दे रही हैं। पापी राक्षस ने सोने का हिरन बन कर छल से कैसा भारी अनर्थ किया था। उसको यद्यपि उसकी करनी का उचित फल मिल गया तथापि वह दुर्घटना जब याद आती है तब हृदय में भारी वेदना होती है। उस घटना के बाद जब आर्य

विकल होकर कातरता प्रकट कर रहे थे उस समय की दशा को देख कर पत्थर का कलेजा भी मोम हो जाता था और वज्र का हृदय भी फट पड़ता था।

लक्ष्मणजी के मुँह से इतनी बात सुनकर, आँखों में पानी भर कर, सीताजी मन ही मन कहने लगीं—हाय! मुझ अभा-गिनी के कारण आर्यपुत्र को कितना कष्ट उठाना पड़ा! उसी समय श्रीरामचन्द्रजी महाराज भी अपनी आँखों से आँसुओं की धारा बहाने लगे। लक्ष्मणजी ने कहा—आर्य! चित्र देख कर आप इतने अधीर क्यों हो गये? श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— वत्स, उस समय जो विषम वियोग मुझे उपस्थित हुआ था, मेरे अन्तःकरण में जो भारी पीड़ा हुई थी, उससे यदि उस समय क्षण क्षण में शत्रुओं से बदला लेने की प्रतिज्ञा वा संकल्प मेरे जी में न पैदा होता, तो मैं वैसी दशा में कभी प्राण धारण नहीं कर सकता था। चित्र देखने से वही दुर्दशापन्न दशा याद आगई। तुमने तो सब कुछ अपनी आँखों देखा है, फिर तुम अजान की तरह क्या बात कह रहे हो?

यह सुन कर लक्ष्मणजी कुछ उदास और लज्जित हुए। उस समय श्रीरामचन्द्रजी के ध्यान को किसी दूसरी ओर फेरने की आवश्यकता समझ कर उन्होंने सीताजी से कहा—आर्ये, इधर दण्डकारण्य-भूमि देखिए। यहाँ कबन्ध नामी राक्षस रहता था। और इधर ऋष्यमूक पर्वत पर मतङ्ग मुनि का आश्रम था। यह देखिए, वही सिद्ध शवरी है। यह पम्पा नामक सरोवर

है। पम्पा का नाम सुन कर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी से कहने लगे—प्रिये ! पम्पा बड़ा सुहावना सरोवर था। मैं तुम्हें खोजता हुआ इसी पम्पा के किनारे गया था। मैंने देखा था, उस समय इसमें बड़े मनोहर कमल के फूल खिल रहे थे। मन्द मन्द वायु के लगने से धीरे धीरे हिलते हुए कमलपुष्प सरोवर की शोभा को चौगुनी बढ़ा रहे थे। उनकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। उनकी सुगन्ध को सूँघ सूँघ कर भौंरे गुन गुन करके गान करते उड़ते फिर रहे थे। हंस, सारस आदि नाना प्रकार के पक्षी मन में मगन होकर वहाँ किलोलें कर रहे थे। उस समय मेरी आँखों में से बराबर आँसुओं की धारा बह रही थी। इसलिए, आँखों में आंसुओं के कारण, उस समय मैं इस सरोवर की शोभा भी अच्छी तरह नहीं देख सका। उस समय, मेरी आँखों में से एक बूँद आँसू टपक कर दूसरी बूँद के आने तक जो समय मिलता था उसी में मैंने यह थोड़ा घना देख पाया था।

उस चित्रपट पर एक जगह दृष्टि जमा कर सीताजी लक्ष्मणजी से पूछने लगीं—वत्स, जिस पर्वत के ऊपर फूले कदम्ब की टहनियों पर मतवाले मोर-मोरनी पक्षीगण नाच रहे हैं और जिस पर्वत पर दुबले पतले आर्यपुत्र मूर्च्छित पड़े हैं और तुम भी रोते रोते इनको पकड़ रहे हो, इसका क्या नाम है? लक्ष्मणजी ने कहा—इस पर्वत का नाम माल्यवान् है। माल्यवान् वर्षाकाल में बड़ा मनोहर स्थान है। देखिए, नये बादलों के मिलने से इसके शिखरों की कैसी कमनीय शोभा होरही है।

इसी जगह आर्य बड़े व्याकुल हुए थे । यह सुन और पहली दशा को स्मरण करके श्रीरामचन्द्रजी बड़े अधीर और व्याकुल होकर कहने लगे—वत्स, बस करो, बस करो, रहने दो। तुम माल्यवान् की चर्चा और मत करो । उसे सुन कर मेरा शोकसागर उमड़ा पड़ता है; जानकी-विरह फिर नया हुआ जाता है।

इतने में ही सीताजी को आलस्य सा मालूम होने लगा। यह देख कर लक्ष्मणजी ने कहा—आर्य, बस, अब चित्र देखना बन्द करना चाहिए। मालूम होता है, आर्या जानकीजी थक गईं। अब इन्हें आराम करना चाहिए। मैं जाता हूँ । आप विश्राम कीजिए।

इतना कह और बिदा लेकर जब लक्ष्मणजी चलने को हुए तब सीताजी श्रीरामचन्द्रजी से कहने लगीं—नाथ, चित्र देखते देखते मेरे जी में एक इच्छा हुई है। आप उसे पूरी कीजिएगा। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, क्या इच्छा है, कहो तो ? जल्द पूरी की जायगी। तब सीताजी ने कहा—नाथ, मेरी बड़ी इच्छा है कि फिर ऋषि-पत्नियों के साथ रह कर मैं तपोवन में विहार करूँ और निर्मल जल से भरी हुई भागीरथी गंगा में स्नान करूँ। सीताजी की इच्छा सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा—वत्स, हमारे गुरु महाराज तथा अन्यान्य वृद्ध लोगों ने भी यही आज्ञा दी है कि जब जब सीता कोई इच्छा प्रकट करें तब तब उनकी इच्छा जल्द पूरी की जाय।

इसलिए, जाने के लिए तैयारी करो। कल प्रातःकाल इन्हें इनके मन-चाहे स्थान पर पहुँचाना चाहिए। यह सुन, बड़ी प्रसन्न होकर सीताजी ने कहा—नाथ, आप भी साथ चलिएगा। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, तुम यह क्या कहती हो ? क्या मैं तुम्हारी आँखों से ओझल होकर घड़ी भर भी सुख-चैन में रह सकता हूँ ! इसके बाद सीताजी मुसकराती हुईं लक्ष्मणजी की ओर देख कर बोलीं— वत्स, तुमको भी हमारे साथ चलना होगा। 'जो आज्ञा' कह कर लक्ष्मणजी वहाँ से चले गये और चलने की तैयारी करने लगे।

दूसरा परिच्छेद

लक्ष्मणजी के जाने पर, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी दोनों विश्राम करने के मन्दिर में चले गये। वहाँ जाकर दोनों आपस में निःसंकोच बातचीत करने लगे। कुछ देर में सीताजी को आलस्य आने लगा। तब श्रीरामचन्द्र ने कहा—प्रिये, यदि तुमको नींद आ रही है या थकावट मालूम होती है तो मेरे गले में अपनी बाँह डाल कर कुछ देर आराम कर लो। सीताजी ने वैसा ही किया। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, तुम्हारी भुज-लताओं के छूने से मेरे शरीर में मानो अमृत की वर्षा सी हो रही है; मेरी सब इन्द्रियाँ अभूतपूर्व रस का आस्वादन करके अवश हो रही हैं, चेतनता दूर भागी जा रही है! नहीं मालूम मुझे एकदम नींद ने घेर लिया या मोह ने? कुछ समझ में नहीं आता। श्रीरामचन्द्रजी के मुख से निकले हुए अमृतमय वचनों को सुन कर सीताजी हँसती हुई कहने लगीं—नाथ, आप जिस पर अनुकूल होते हैं उस पर चिरकाल तक अनुकूल ही रहते हैं और आपकी प्रसन्नता भी चिरकाल तक वैसी ही बनी रहती है। जहाँ तक मैंने सुना है, इससे अधिक सौभाग्य की बात स्त्रियों के लिए और क्या हो सकती है? अब यही प्रार्थना है कि चिरकाल तक ऐसा ही स्नेह, प्रेम और अनुग्रह बना रहे।

सीताजी के कोमल, मधुर और मोहनेवाले वचन सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, तुम्हारी बात सुन कर मेरे शरीर में बड़ी ठंडक पड़ी; दोनों कानों में अमृतरस का सिंचन हुआ, इन्द्रियाँ सब मोहित हो गईं और अन्तः-करण में एक प्रकार का जीवन सा आगया। सीताजी कुछ लज्जित हो कर बोलीं—नाथ, ऐसी बातों के कहने से ही लोग आप को प्रियंवद—प्यारा बोलने वाला—कहते हैं। जो हो, इस अभागिनी को स्वप्न में भी ऐसा विश्वास न था कि यह सौभाग्य प्राप्त होगा। इतना कह कर सीताजी सोने की इच्छा करने लगीं। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—प्रिये, इस समय और तरह की शय्या की आवश्यकता नहीं है। इस लिए मेरी जो बाँह विवाहकाल से लेकर आज तक, क्या घर में, क्या वन में, क्या बचपन में, सदा तकिये का काम देती रही है, वही आज भी तुम्हारे लिए तकिये का काम देगी। यह कह कर श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी बाँह फैला दी। सीताजी भी उस पर अपना सिर रख कर तुरंत सो गईं।

श्रीरामचन्द्रजी प्रेम से कुछ देर सीताजी का मुखारविन्द देख कर, प्रफुल्ल-नयन हो कहने लगे—कैसा अद्भुत चमत्कार है? जिस समय प्यारी का मुखचन्द्र देखता हूँ उसी समय मेरा चित्तचकोर कृतार्थ और अन्तरात्मा अनिर्वचनीय आनन्द से भरपूर हो जाता है। वास्तव में यह घर की लक्ष्मी है; आँखों के लिए रसाञ्जन रूप है। इसके शरीर का स्पर्श वैसी

ही ठंडक पहुँचाता है जैसी चन्दन के लेप से होती है। इसकी बाहुलता मेरे गले में पड़ कर शीतल और चिकने मोती के हार का काम करती है। कैसा आश्चर्य है! प्यारी की सब बातें अलौकिक आनन्ददायक हैं। श्रीरामचन्द्रजी इसी तरह मन में सोच रहे थे; इतने में सोती हुई सीताजी स्वप्न देखती हुई कहने लगीं—हा नाथ! कहाँ रह गये?

स्वप्नावस्था में कही हुई सीताजी की बात सुन कर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे—कैसे अचम्भे की बात है! चित्र के देखने से प्यारी के जी में जिस विरहवेदना की याद आगई थी उसी की याद, स्वप्न में फिर कष्ट दे रही है। यह कह, सीताजी के शरीर पर हाथ फेरते हुए, श्रीरामचन्द्रजी प्रेम में पुलकित होकर कहने लगे—अहा! सच्चा प्रेम भी क्या पदार्थ है! क्या सुख, क्या दुःख, क्या सम्पत्ति, क्या विपत्ति, क्या जवानी, क्या बुढ़ापा, सभी समय एकसा ही बना रहता है, इसमें कुछ भी विकार नहीं पैदा होता। ऐसे सच्चे प्रेम का अधिकारी होना थोड़े सौभाग्य की बात नहीं। किन्तु आक्षेप और खेद की बात इतनी ही है कि ऐसा प्रेम, ऐसा सच्चा स्नेह, जगत् में मिलना नितान्त दुर्लभ है। जो यह ऐसा दुर्लभ न होता तो संसार में सुख की सीमा न रहती।

श्रीरामचन्द्रजी की बात पूरी भी न हुई थी कि इतने में एक दासी सामने आ, हाथ जोड़ कर कहने लगी—महा-

राज, द्वार पर दुर्मुख खड़ा है। क्या आज्ञा है? दुर्मुख रनवास में आने जाने वाला विश्वासपात्र सेवक था। श्रीरामचन्द्रजी ने उसको, वर्तमान राज्यशासन के विषय में नगरनिवासी तथा अन्यान्य राष्ट्रनिवासी लोगों की सम्मति जानने के काम पर नियुक्त कर रक्खा था। वह दिन भर छिपा हुआ यही बात मालूम करता फिरता था और दिन में जो बात देखता सुनता, वह रात में श्रीरामचन्द्रजी से आ कहता था। उस समय उसके आने का समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने दासी से कहा—कहो, वह जल्द हमारे पास आवे। प्रणाम करके दुर्मुख सामने आ हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी ओर देख कर पूछा—क्यों जी दुर्मुख, आज क्या नई बात जानी? दुर्मुख ने कहा—महाराज, क्या नगरनिवासी, क्या राष्ट्रवासी, सभी कहते हैं कि हम सब लोग आज कल बड़े सुख-चैन में हैं।

यह सुन, श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—तुम नित्य हमारी प्रशंसा की बातें ही आकर सुनाया करते हो। यदि किसी ने हमारी कुछ बुराई की हो, हमारा कोई काम किसी ने नापसन्द किया हो, तो कहो; हम उसके दूर करने का प्रयत्न करें। हम तुमको केवल प्रशंसा मात्र सुनने के लिए ही नहीं भेजा करते; तुमको भेजने का प्रयोजन यही है कि लोग हमारे विषय में अच्छा या बुरा जो कुछ कहते हों वह सब तुम हमें निष्कपट भाव से सुना दिया करो।

और दिन तो दुर्मुख नित्य प्रशंसा ही सुन कर आया करता था और जो कुछ सुन कर आता था वही महाराज से निवेदन कर देता था; परन्तु आज सीताजी के विषय में उसने किसी के मुँह से कुछ बुराई की बात सुनी थी और उसे अप्रिय समझ कर उसने अपने जी में छिपा लिया था। उसे श्रीरामचन्द्रजी को नहीं सुनाया था। अब श्रीरामचन्द्रजी के मुँह से दोष-कीर्तन की बात निकलते ही वह एकदम चकित और हतबुद्धि हो कर कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर, बुद्धि को स्थिर और सावधान करके उदासी के साथ, स्वर बिगाड़ कर कहने लगा—ना महाराज, मैंने कोई दोष-कीर्तन की बात नहीं सुनी; मैंने किसी के मुँह से आप के विषय में कोई बुराई नहीं सुनी। उसने ऐसा कह दिया अवश्य; पर कहते हुए उसके मुँह की चेष्टा, और आकार-प्रकार, असली बात छिपाने के कारण और के और ही हो गये थे। उन आकार-प्रकार और चेष्टाओं को देख कर श्रीराम-चन्द्रजी के मन में कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने समझ लिया कि अवश्य आज इसने कोई ऐसी बात किसी से सुनी है जिसे हमसे छिपाता है। तब श्रीरामचन्द्रजी ने उससे कहा—तुमने आज अवश्य दोष-कीर्तन सुना है। क्यों बात छिपाते हो? क्या सुना है, बोलो। देर न करो। न कहोगे तो हम तुम पर रुष्ट होंगे और फिर सारे जन्म तुम्हारा मुँह न देखेंगे। श्रीरामचन्द्रजी का इतना आग्रह देख कर दुर्मुख बड़ा

शङ्कित हुआ। वह मन ही मन सोचने लगा—मैं आज कैसे विषम सङ्कट में आ पड़ा। मैं राजमहिषी श्रीसीताजी के विषय में लोक-निन्दा की बात महाराज को कैसे सुनाऊँ? हाय मैं बड़ा अभागा हूँ! नहीं तो ऐसे काम का भार ही अपने सिर क्यों लेता? मुझे ऐसा मालूम होता तो मैं इस काम को ही क्यों करता? किन्तु जब पहले ही आगा पीछा न सोचा तब प्रभु के सामने अब अवश्य ही यथार्थ बात कहनी होगी। यही सोचकर वह काँपता हुआ बोला—महाराज, जो आप मुझ से ठीक ठीक ही कहाना चाहते हैं तो यहाँ से उठ कर दूसरे स्थान में चलिए। मैं यहाँ वह बात, प्राणान्त होने पर भी, नहीं कह सकता। वह बात सुनने के लिए श्रीरामचन्द्रजी इतने उत्सुक हुए कि सीताजी के उठने की बाट भी न देख कर, धीरे धीरे अपना हाथ उनके सिर के नीचे से निकाल कर, दुर्मुख को साथ ले शीघ्र एक और घर में चले गये।

इस प्रकार, एकान्त स्थान में जाकर, श्रीरामचन्द्रजी दुर्मुख से व्यग्रता के साथ कहने लगे—देर न करो, जो कुछ सुना है सब ठीक ठीक सुनाओ। तुम्हारे आकार-प्रकार और चेष्टा को देख कर मेरे जी में तरह तरह के सन्देह उठ रहे हैं। उसने कहा—महाराज, जो सर्वनाश की भयानक बात मैंने सुनी है, उसे महाराज के सामने कह सकूँगा या नहीं, यही सोच कर मेरे सारे शरीर का रुधिर खलबला उठा है। किन्तु, जब हिताहित की बात का विचार किये बिना मैंने इस काम का भार

अपने ऊपर लिया है तब अवश्य ही सब कहना होगा। मैंने जैसा सुना है वैसा ही निवेदन करता हूँ,—इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है। महाराज, प्रायः सभी लोग एक-मत होकर आपके राज्य-शासन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहे हैं। लोग कह रहे हैं कि हम इस राज्य में बड़े सुखी हैं, किसी राजा ने आज तक यहाँ ऐसे अच्छे ढङ्ग से राज्य नहीं किया। किन्तु, कोई कोई सीताजी की बात पर निन्दा करते हैं। वे कहते हैं कि हमारे महाराजा का स्वभाव बड़ा निर्विकार है, बड़ा भोला है; क्योंकि रावण के घर सीताजी कितने ही दिन अकेली रहीं, पर महाराज उनमें कोई दोष और कोई बुराई न समझ कर, उन्हें झट अपने घर ले आये। अब, आगे को, हम लोगों के घर में भी स्त्रियाँ दूषित हो जायँगी। अब उनकी रक्षा और शिक्षा कठिन हो जायगी। उन्हें समझावेंगे तो वे सीताजी की बात कह कर हमको निरुत्तर कर देंगी। राजा ही धर्म-अधर्म का कर्त्ता है। हम लोग तो प्रजा हैं, राजा जिस धर्म का आचरण करेंगे, उसी पर हमें भी चलना होगा। महाराज, जो सुना था सो आपसे निवेदन कर दिया। मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। हे ईश्वर, इतने दिनों के बाद आज तुमने मेरा दुर्मुख नाम यथार्थ किया! यह कह कर, और बिदा ले, दुर्मुख रोता रोता वहाँ से चला गया।

दुर्मुख के मुँह से सीताजी के पवित्र चरित्र पर कलङ्क लगाने की बात को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी महाराज, छिन्नमूल

वृक्ष की तरह, धरातल पर "हा हतोऽस्मि" कह कर गिर पड़े। आँखों से आँसू बहाते हुए गद्गद वाणी से विलाप और परिताप करके कहने लगे—हा! कैसी सर्वनाश की बात सुनी है! इसकी अपेक्षा मेरी छाती पर वज्र क्यों न गिर पड़ा? मैं किस लिए अब तक जीता हूँ! मैं बड़ा अभागा हूँ, नहीं तो किस लिए राज्य छोड़ कर वनवास भोगना पड़ता? न वन में जाता! और न पापी रावण पञ्चवटी में आकर सीता को हर ले जाता! और न निर्मल कुलवधू को ऐसा भारी दोष लगता! और, क्यों यही दोष एक बार अद्भुत उपाय द्वारा दूर हो कर फिर अब नया होता? मेरा जन्म सर्वथा दुःख भोगने के लिए ही हुआ है। अब क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। यह लोकनिन्दा बड़ी कठिन है। इस लोकापवाद को सुना अनसुना करूँ, या निरपराधिनी जानकी का परित्याग करूँ? कुछ भी समझ में नहीं आता। मेरी तरह कभी कोई उभयसंकट में न पड़ा होगा।

इसी तरह परिताप करके श्रीरामचन्द्रजी कुछ देर तक नीचे दृष्टि किये शोक में पड़े रहे। फिर लम्बी सांस छोड़ कर कहने लगे—अच्छा, अब इस विषय में और अधिक कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेचना से क्या फल! जब राज्य-भार अपने सिर लिया है तब प्रजा-रञ्जन करना अपना प्रधान कर्त्तव्य कर्म है। इसलिए जानकी का परित्याग करना होगा। हा हतविधे, तेरे मन में यही था! इतना कह कर श्रीरामचन्द्रजी मूर्च्छित हो भूतल पर गिर पड़े।

कुछ देर बाद, चेतनता आने पर, श्रीरामचन्द्रजी करुणास्वर से कहने लगे—जो यह चेतनता और न आती तो ही अच्छा होता; क्योंकि निरपराधिनी सीता को त्याग कर दुर्निवार्य पाप-कर्म में तो लिप्त न होना पड़ता ! अष्टावक्र मुनि के सामने मैंने यही कहा था कि यदि प्रजारञ्जन के लिए मुझे सीता का भी परित्याग करना पड़े तो उसे भी करूँगा। क्या इसी घटना के लिए मेरे मुँह से ऐसी विषम प्रतिज्ञा निकली थी। हा प्रिये जानकि, हा प्रियभाषिणि, हा राममय-जीविते, अन्त में तुम्हारी यह दशा होगी—इसका मुझे स्वप्न में भी ज्ञान न था। तुम ऐसे दुराचारी, ऐसे नराधम और ऐसे हत-भाग्य के पल्ले पड़ी हो, कि कुछ दिन के लिए भी तुम्हारे भाग्य में सुख भोगना नहीं बदा। तुम थोड़े काल भी सुख न भोग सकीं ! तुमने विष-वृक्ष का, चन्दन-तरु समझकर, आश्रय लिया। माना कि मैं बड़े पवित्र वंश में पैदा हुआ हूँ, परन्तु आचरण तो चण्डाल से भी सहस्रगुने गये बीते हैं; नहीं तो बिना अपराध तुमको वन निकालने पर क्यों सन्नद्ध होता ? हाय ! जो अभी, इसी समय, मेरे प्राण निकल जायँ तो भी इस दुःख से छुटकारा पा जाऊँ। अब और जीने से क्या फल ? जीने की तो अब आवश्यकता ही नहीं रही। अब मुझे सारा जगत् शून्य और ऊजड़ वन की तरह दिखाई दे रहा है।

इसी तरह कहते कहते श्रीरामचन्द्रजी बड़े व्याकुल हुए। उनका शरीर काँपने लगा। थोड़ी देर तक वे चुप साधे रहे। फिर लंबी साँस छोड़ कर विलाप करने लगे। 'हाय ! क्या हुआ' !

कह कर, कौशल्या आदि को सम्बोधन करके आर्तस्वर से कहने लगे—हा मातः, हा तात जनक, हा देवि वसुन्धरे, हा भगवति अरुन्धति, हा कुलगुरो वशिष्ठ, हा भगवन् विश्वामित्र, हा प्रिय-बन्धो विभीषण, हा परमोपकारिन् मित्र सुग्रीव, हा वत्स अञ्जनाहृदयनन्दन हनूमन्, तुम कहाँ हो ? तुम कुछ नहीं जानते, तुमको कुछ मालूम नहीं; तुम्हारा सर्वनाश करने को राम तैयार हो रहा है। अब मैं, वैसे महात्मा लोगों के नाम लेने का भी अधिकारी नहीं रहा। मुझ जैसा पापी यदि ऐसे महात्माओं का नाम भी ले तो निस्सन्देह उनको पाप लग जायगा। जब भोली भाली, शुद्धाचारिणी, पतिप्राणा कामिनी को—सर्वथा निरपराध जान कर भी सहसा परित्याग करने के लिए मैं उद्यत हो गया तब मेरे समान और कौन महापातकी होगा। हा रामाधारप्राणे, पाषाणहृदय नराधम राम के द्वारा तेरे लिए यह दुर्गति होगी, यह तुम्हें स्वप्न में भी ध्यान न होगा। निःसन्देह राम का हृदय वज्र का है, नहीं तो क्या इस समय फट न जाता ? अथवा विधाता ने जान बूझ कर ही मेरा हृदय ऐसा कठोर बनाया है। ऐसा न होता तो मैं ऐसे ऐसे कठोर काम कैसे कर सकता ?

इस प्रकार विलाप-परिताप करके श्रीरामचन्द्रजी आँखों से आँसू पोंछते हुए उसी विश्रामभवन में आये जहाँ सीताजी को सोती छोड़ गये थे। सीताजी के सामने खड़े होकर, हाथ जोड़ कर कहने लगे—प्रिये, अभागी राम इस जन्म के लिए

बिदा माँगता है ! फिर पृथ्वी को सम्बोधन करके कहा—देवि विश्वम्भरे, दुरात्मा राम के छोड़ देने पर अपनी पुत्री की देख-भाल तुम्हीं करना। यह कह कर, असह्य शोकाग्नि से भस्म होते हुए श्रीरामचन्द्रजी वहाँ से बाहर चले गये। वहाँ से चल कर, भाइयों से परामर्श करने के लिए वे उस स्थान में गये जहाँ बैठ कर नित्य मन्त्रणा किया करते थे।

तीसरा परिच्छेद

श्री रामचन्द्रजी महाराज मन्त्रभवन में जाकर राजसिंहासन पर बैठ गये। फिर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों को शीघ्र बुला लाने के लिए सेवक भेजा। शीघ्र बुलाने की बात सुन कर तीनों भाई बड़े चकित हुए। संध्या समय तो आर्या जनकपुत्री के साथ बातचीत कर ही रहे थे, अब इस समय मन्त्रभवन में जाकर अकस्मात् क्यों बुलाया है? इसका भेद कुछ भी न समझ कर वे बड़े सन्देह में पड़े। वे अपने मन ही मन तरह तरह के तर्क-वितर्क करते हुए मन्त्रभवन में जा पहुँचे। देखा, गाल पर हाथ धरे श्रीरामचन्द्रजी अकेले सिंहासन पर बैठे हैं, बार बार लम्बी सांस छोड़ रहे हैं, और आँखों से आँसुओं की अ-विरल धारा बह रही है। बड़े भाई की ऐसी दशा देख कर तीनों भाई विषाद-सागर में मग्न हो गये। उनके इस तरह बैठने का वे कुछ भी मर्म न जान सके। इसलिए, सामने आकर, वे शोकयुक्त अचम्भे में हो, खड़े हो गये। किसी बड़ी भारी आपत्ति के आने की सम्भावना करके किसी का साहस न हुआ कि उनसे कुछ पूछे। अन्त में, भारी विपदा आई जान कर वे तीनों भाई भी, अपने बड़े भाई की ऐसी दशा देख कर, अधीरता से रोने और आंखों से आँसू गिराने लगे।

कुछ देर बाद, उमड़े हुए शोक को रोक कर और आँखों से आँसू पोंछ कर, श्रीरामचन्द्रजी ने बड़े स्नेह से भाइयों को सामने बैठ जाने की आज्ञा दी। वे सब बैठ कर श्रीरामचन्द्रजी के मलिन मुखारविन्द की ओर देखने लगे। श्रीरामचन्द्रजी के नेत्रयुगल से बाष्पधारा बड़े वेग से गिरने लगी। यह देख कर वे भी सब शोक में विह्वल होकर अपनी अपनी आँखों से आँसू बहाने लगे। कुछ देर बाद, लक्ष्मणजी से और न रहा गया। उन्होंने पूछा—आर्य! आपकी यह दशा देख कर हम लोग मरे जाते हैं। आपका भाव देखने से प्रतीत होता है कि कोई भारी अनिवार्य आपदा आ पड़ी है। गम्भीर सागर कभी छोटे मोटे कारणों से चलायमान नहीं हो सकता; साधारण वायु के वेग से हिमाचल कभी नहीं हिल सकता। तब, क्या कारण है, जो आप ऐसे अधीर और कातर हो रहे हैं? उसे विस्तारपूर्वक सुना कर हम लोगों की प्राण-रक्षा कीजिए। आपका मुखारविन्द, इस समय, सायंकाल के कमल तथा प्रभातकाल के चन्द्रमा के समान प्रभाहीन हो रहा है। शीघ्र कहिए, और देर न लगाइए। हमारा हृदय फटा जाता है।

लक्ष्मणजी के इस प्रकार आग्रहपूर्वक पूछने पर, श्रीरामचन्द्रजी दीर्घ निश्वास छोड़ कर और शोक में व्याकुल तथा कातर होकर कहने लगे—वत्स भरत, वत्स लक्ष्मण, वत्स शत्रुघ्न, तुम्हीं मेरे जीवन हो, तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो, और तुम्हारे लिए ही मैं दुःसह राज्यभार का वहन करता हूँ। हित-

साधन में या अहित—अमंगल—के दूर करने में तुम्हीं एक-मात्र मेरे प्रधान सहायक हो। मैं बड़े विषम संकट में पड़ा हूँ और उसी विपत्सागर से पार पाने की इच्छा से मैंने इस असमय में तुम्हें बुलाया है। आई हुई आपदा से बचने के लिए एक ही उपाय हैं। मैंने बहुत तरह से सोच लिया, अच्छी तरह से समझ लिया, अन्त में वही उपाय करना निश्चित किया है। तुम ध्यान लगा कर सुनो। सब बात तुमको सुनाता हूँ। उचित उपाय द्वारा इस विपदा से छुटकारा पाना चाहिए।

इतना कह कर श्रीरामचन्द्रजी चुप होगये। वे फिर प्रबल वेग से अश्रुधारा बहाने लगे। तीनों भाई यह देख कर, पहले से और भी अधिक कातर होकर सोचने लगे—आर्य के लक्षणों से प्रतीत होता है कि अवश्य कोई महा अनर्थ उपस्थित हुआ है। न जाने कौन सी सर्वनाश की बात कहेंगे। किन्तु अटकल से वे कुछ न जान सके। इसलिए उस विषम दुर्घटना के सुनने की प्रबल इच्छा से तीनों भाई दुखी हो कर वड़े भाई का मुँह देखने लगे।

पहले तो श्रीरामचन्द्रजी कुछ देर चुप रहे, परन्तु फिर लम्बी साँस छोड़ कर बोले—भाइयो, सुनो। हमसे पहले इक्ष्वाकु-वंश में जितने नरपति जन्म धारण कर चुके हैं वे सब अपने प्रबल प्रताप के प्रभाव से, प्रजा-पालन से और अन्यान्य अलौ-किक कामों के करने से इस परम पवित्र राजवंश को त्रिभुवन

में विख्यात कर गये हैं। मेरे समान दूसरा अभागा कोई नहीं; क्योंकि मैंने जन्म लेकर उस चिर-पवित्र और त्रिलोकविख्यात-उज्ज्वल वंश को अपयश-रूप कीचड़ से लिप्त और मलिन कर दिया। लक्ष्मण, तुम से तो कोई बात छिपी ही नहीं है; तुम तो सब जानते हो। जिस समय हम तीनों पञ्चवटी में रहते थे उस समय, हमारी तुम्हारी अनुपस्थिति में, दुराचारी रावण सीता को बलपूर्वक हर लेगया था। सीता अकेली उस पापी के घर बहुत दिन रही। अन्त में, सुग्रीव की सहायता से हमने उस दुष्ट को उचित दण्ड देकर सीता को प्राप्त किया। मैं उसी सीता को, दूसरे के घर में वर्षों रही हुई सीता को, ग्रहण करके घर ले आया हूँ। इसी के लिए पुरवासी और राष्ट्रवासी लोग असंतुष्ट होकर निन्दा कर रहे हैं। इस लिए मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि जानकी का त्याग करूँगा। सब तरह से प्रजा-रञ्जन करना राजा का परम धर्म है। यदि मैं इस धर्म में कृत-कार्य्य न हुआ, यदि मैं प्रजारञ्जन न कर पाया, तो फिर, अनार्यों की तरह मेरे जीने से क्या फल है? इस समय तुम भी मेरे काम में प्रसन्नता से सहमत हो जाओ। ऐसा करने से ही इस भारी संकट से उद्धार पा सकते हैं, अन्यथा नहीं।

बड़े भाई की बात सुन कर तीनों छोटे भाई बड़े दुखी हुए। भय, विस्मय और शोक से व्याकुल और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर, वे कुछ देर तक चुप साधे अधोमुख किये बैठे रहे। अन्त में बड़े कातर और नम्रभाव से लक्ष्मणजी ने कहा—आर्य, आप जब जो

आज्ञा करते हैं, उसमें हम लोग कभी चूँ भी नहीं करते। इस समय भी हम आप की आज्ञा का उल्लङ्घन करने में असमर्थ हैं। किन्तु आप की प्रतिज्ञा सुन कर हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। हमारे अन्तःकरण में एक क्षण के लिए भी ऐसी शङ्का न थी कि आपके पास आकर हम ऐसी सर्वनाश की बात सुनेंगे। जो हो, इस विषय में मुझे कुछ कहना है; यदि आज्ञा हो तो निवेदन करूँ ?

लक्ष्मणजी की इस प्रकार कातरोक्ति सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—वत्स, जो कहना हो, बेखटके कहो। तब लक्ष्मणजी ने कहा—यह ठीक है कि आर्या जानकी अकेली रावण के घर रहीं; और रावण दुराचारी था, इसमें भी कुछ सन्देह नहीं। परन्तु उस दुष्ट पापी को समुचित दण्ड देने के बाद, जब सीताजी आपके सामने लाई गईं तब आपने लोक-निन्दा के भय से उन्हें ग्रहण नहीं किया। किन्तु जब अलौकिक परीक्षा के द्वारा सारे संसार ने सीता जी को शुद्ध जान लिया और मान लिया तब आपने उन्हें ग्रहण किया था। वह परीक्षा तो सबके सामने हुई थी। कुछ छिप कर तो की ही नहीं गई। हम तुम दोनों भाई, हमारी सब सेना, सेनापति, और कितने ही देव, देवर्षि और महर्षि भी परीक्षा के समय उपस्थित थे। सभी ने साधु-वाद करके आर्या को निर्दोष और शुद्धाचारिणी स्वीकार किया था। इसलिए, अब पराये घर रहने के दोष से सीताजी को कोई दूषित नहीं कर सकता। फिर आपने किस लिए ऐसी

विषम प्रतिज्ञा की है? समझ में नहीं आता। निर्मूल लोक-निन्दा को सुन कर, आप जैसे महात्माओं को विचलित होना उचित नहीं। साधारण लोगों को न्याय-अन्याय का विवेक नहीं हुआ करता, उनकी बुद्धि और विचार-शक्ति न्यून होती है। जो उनके जी में आया वही विना विचारे कह बैठे। जो कुछ किसी के मुँह से झूठ-सच सुन लिया उसी को सच समझ कर साधारण लोग विश्वास कर लेते हैं। उनकी बातों का विश्वास करने से संसार के काम नहीं चल सकते। आर्या सर्वथा शुद्धाचारिणी हैं—इस बात को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। और आपके अन्तःकरण में भी लेशमात्र सन्देह नहीं है। जिस अलौकिक परीक्षा द्वारा आपने सीताजी की पवित्रता सारे संसार में विदित कर दी है उससे किसी के जी में भी कुछ सन्देह नहीं हो सकता। ऐसा होने पर भी यदि आप सीता का परित्याग करेंगे तो संसार हमें मूर्ख समझेगा; और हम लोगों को दुर्निवार्य पाप-पङ्क में लिप्त होना पड़ेगा। अतएव, आप सब बातें सोच कर कर्तव्य का निश्चय कीजिए। हम लोग आप की आज्ञा के एकमात्र पालन-कर्त्ता हैं। आप जो आज्ञा करेंगे, उसी को निःसन्देह हम शिरो-धार्य्य करेंगे।

इतना कह कर लक्ष्मणजी चुप हो गये। श्रीरामचन्द्रजी कुछ देर चुप रह कर बोले—वत्स, सीता के शुद्धाचारिणी होने में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। साधारण मनुष्य जैसा सुनते हैं या जैसा उनके जी में समा जाता है उस पर ही विश्वास कर

बैठते हैं—यह भी ठीक है। इसे मैं भी अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु इस विषय में प्रजा का कुछ अपराध नहीं है। अपराध तो हमारी अदूरदर्शिता और अविचार का है। जिस समय हम सीता को अयोध्या में लाये थे, उस समय यदि अयोध्यावासियों के सामने उसकी परीक्षा करते तो किसी को कुछ कहने का अवकाश न मिलता। ऐसा करने से सबके जी की शुद्धि हो जाती। सीता ने अद्भुत परीक्षा द्वारा अपनी पवित्रता और शुद्धि का पर्याप्त प्रमाण दे दिया है सही, परन्तु उस परीक्षा पर प्रजा का पूरा विश्वास नहीं है। मालूम होता है, कितने ही लोगों को अभी इनकी परीक्षा का कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसी लिए लोग सीता के पवित्र होने में सन्देह कर रहे हैं। विशेष कर रावण के पापाचरण और सीता का उसके यहाँ बहुत दिन रहना, यही दो बातें लोगों को सन्देह में डाल रही हैं। इस लिए मैं प्रजा का कुछ भी दोष नहीं देखता। मेरे ही प्रारब्ध से यह सब उपद्रव खड़ा हुआ है। उसके लिए मैं दूसरे को दोषी नहीं बनाता। यदि मैं राजा न होता, या धर्म को साक्षी करके प्रजारञ्जन की प्रतिज्ञा न करता, तो भी सम्भव था, कि मैं अमूलक लोक-निन्दा का निरादर करके बेखटके अपना जीवन व्यतीत करता। परन्तु यदि राजा होकर भी मैं प्रजा को सन्तुष्ट न रख सका तो मेरे जीने का क्या फल ? देखो, प्रजा ने सीता को असती समझ रक्खा है। उनके जी से यह विश्वास किसी तरह हटाये नहीं हट सकता। ऐसी अवस्था में सीता को घर रखने पर, वे लोग,

असती से प्रेम करने के कारण, मुझसे भी घृणा करने लगेंगे। जीवन भर प्रजा की दृष्टि में घृणित होने से तो मर जाना ही भला। मैं तो प्रजारञ्जन के लिए अपने प्राण त्यागने के लिए भी तैयार हूँ। वैसे तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हो, परन्तु यदि प्रजा की प्रसन्नता के लिए एक बार तुम्हें भी त्यागना पड़े तो भी मैं निःसङ्कोच ऐसा कर सकता हूँ। ऐसी दशा में सीता का त्यागना कोई बड़ी बात नहीं। इसलिए, तुम कितना ही कहो और चाहे इसमें अन्याय ही हो, पर मैं सीता का परित्याग करके कुल पर लगते हुए कलङ्क को धोने का पक्का विचार कर चुका हूँ। यदि तुम लोगों को मुझ पर दया और प्रीति हो तो इस विषय में मुझ से और कुछ मत कहना। जो सीता घर में रहेंगी तो मैं अपने प्राणों का परित्याग करूँगा। तात्पर्य्य यह कि या तो सीता रहेंगी या मेरे प्राण। इन दोनों में से एक ही रह सकता है। अब मैंने यही स्थिर किया है।

इतना कह कर श्रीरामचन्द्रजी ने एक लम्बी साँस भरी। आँखों से आँसू बहने लगे और मुँह नीचे को हो गया। कुछ देर चुप रह कर लक्ष्मण जी से फिर कहने लगे—वत्स, मन में से सब सोच निकाल कर मेरी आज्ञा का पालन करो। यह उपद्रव खड़ा होने से पहले ही सीता तपोवन में जाने की इच्छा प्रकट कर चुकी हैं। इसी बहाने तुम इन्हें ले जाकर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ। ऐसा करने से ही मेरी प्रसन्नता होगी। यदि तुम इसमें कुछ भी किन्तु परन्तु करोगे तो मैं बड़ा अप्रसन्न

हूँगा। तुमने आज तक कभी मेरी आज्ञा नहीं टाली। इसलिए वत्स, कल प्रातःकाल मेरी आज्ञा का पालन करना। इसमें किसी तरह की ढील न हो। एक बात मैं और कहे देता हूँ। वह यह कि गंगा के पार जाने तक इस बात का भेद जानकी को न बताया जाय। तुम्हारे हृदय में दया बहुत है, इसीसे मैं तुमको पहले से ही सावधान किये देता हूँ।

यह कह कर श्रीरामचन्द्रजी नीचे को मुँह करके आँसुओं की धारा बहाने लगे। उनके तीनों भाई भी ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा सुन कर, उसमें कुछ भी आपत्ति न करके, नीचे को मुँह कर आँसू बहाने लगे। कुछ देर बाद श्रीरामचन्द्रजी ने फिर लक्ष्मणजी से सीताजी को वन में निकाल आने के विषय में कहा। फिर सब लोग विदा लेकर अपने अपने विश्राम-भवन में चले गये। श्रीरामचन्द्रजी भी अपने विश्राम-भवन में चले गये। चारों भाइयों ने वह रात बड़े दुःख से काटी।

चौथा परिच्छेद

अगले दिन प्रातःकाल लक्ष्मणजी ने सुमन्त्र को बुला कर कहा—सारथे, शीघ्र रथ जोतकर तैयार करके लाओ। आर्या जानकी तपोवन देखने जायँगी। आज्ञा पाते ही सुमन्त्र रथ तैयार करने के लिए चला गया। इसके बाद, लक्ष्मणजी ने सीता जी के मकान में जाकर देखा तो तपोवन के उपयोगी सामान तैयार किये वे रथ की बाट देख रही हैं। लक्ष्मणजी ने 'आर्ये, प्रणाम करता हूँ' कह कर अभिवादन किया। सीताजी ने 'वत्स, चिरजीवी और चिरसुखी रहो', कह कर बड़े स्नेह से लक्ष्मणजी को आशीर्वाद दिया। लक्ष्मणजी ने कहा—आर्ये, रथ को तैयार ही समझिए। अब कुछ देरी नहीं है। सीताजी बड़ी प्रसन्न होकर कहने लगीं—वत्स, 'आज प्रातःकाल तपोवन की यात्रा करेंगे', इस हर्ष में मुझे रात भर अच्छी तरह नींद भी नहीं आई। मैं सब तरह से तैयार बैठी हूँ। रथ आते ही सवार हो जाऊँगी। मेरे मन में संदेह था कि आर्यपुत्र (श्रीरामचन्द्रजी) ऐसे समय में मुझे कदाचित् तपोवन न भेजें; परन्तु उन्हों ने कृपा करके, प्रसन्नता से, मुझे तपोवन जाने की अनुमति देदी। मुझे उस समय जितना हर्ष हुआ, उसे मैं कह नहीं सकती। मैंने पहले जन्म-जन्मान्तरों में अनेक बार तपस्या

की होगी, उसी तपस्या का फल है जो ऐसे अनकूल पति मिले । आर्यपुत्र के समान कभी किसी को कोई दूसरा पति न मिला होगा । इनके स्नेह, दया और ममता का स्मरण करके मुझे अपने सौभाग्य का बड़ा गर्व होता है । मैं देवताओं से नित्य यही प्रार्थना किया करती हूँ कि, यदि फिर भी मैं स्त्री बनूँ तो इन्हीं आर्यपुत्र की; यही मेरे भर्त्ता हों । यह कह कर सीताजी बड़ी हर्षित हो फिर बोलीं—वत्स, वनवास के समय मुनि-पत्नियों के साथ हमारा बड़ा स्नेह और मेल-जोल हो गया था, उन्हीं को देने के लिए यह सब वस्त्राभूषण मैंने ले लिये हैं ।

यह कह कर सीताजी ने वह सब सामान लक्ष्मणजी को दिखला दिया । उसी समय एक दासी ने आकर सँदेशा दिया कि सुमन्त्र रथ तैयार किये द्वार पर खड़ा है । तपोवन देखने के लिए सीताजी इतनी उत्सुक हो रही थीं कि सुनते ही, बड़ी शीघ्रता से, सब सामान साथ लिवा कर लक्ष्मणजी के साथ रथ पर चढ़ गईं । थोड़ी ही देर में रथ अयोध्या से बाहर निकल गया । नगरी से बाहर की भूमि को देख कर सीताजी प्रसन्न हो कहने लगीं—वत्स लक्ष्मण, यह जो मैं मनोहर दृश्य देख रही हूँ, यह सब आर्यपुत्र की प्रसन्नता का ही फल है । यदि वे प्रसन्नता से मुझे यहाँ आने की अनुमति न देते तो यह सब कुछ काहे को देखने में आता । मैंने जिस प्रसन्नता के साथ उनकी सेवा में प्रार्थना की थी उससे

भी अधिक उन्होंने प्रसन्नता दिखलाई । भोली भाली सीता के आनन्द को देख कर और श्रीरामचन्द्रजी ने उनके साथ जैसी प्रसन्नता वा अनुकूलता दिखाई थी उसे स्मरण करके लक्ष्मणजी मन ही मन कुढ़ने लगे । उन्हों ने उछलते हुए शोक को बड़ी कठिनता से दबाया, और बहुत बड़े प्रयत्नों से अपना भीतरी भाव छिपा कर वे सीताजी की तरह हर्ष प्रकाशित करने लगे ।

कुछ दूर तक वे इसी तरह चले आये । पर, आगे एक जगह सीता जी मलिन-मुख होकर कहने लगीं—वत्स, अभी मैं बड़ी प्रसन्न थी, किन्तु सहसा मेरा भाव कुछ का कुछ होता जा रहा है । मेरी दाहिनी आँख निरन्तर फड़क रही है, सारा शरीर काँप रहा है और जी बहुत घबराता है । यह सब घबराहट और दुःख अकस्मात् कैसे हो गया ? कुछ समझ में नहीं आता । नहीं मालूम आर्यपुत्र कैसे होंगे; क्या उनके लिए कोई अशुभ घटना घटी है ! या प्राणप्रिय भरत और शत्रुघ्न का तो कुछ अनिष्ट नहीं हुआ ! कहीं भगवान् ऋष्यशृङ्ग के यहाँ से तो कोई अशुभ संवाद नहीं आया ! कौन कैसे है, कुछ समझ नहीं पड़ता । जो हो, लक्षणों से निस्सन्देह प्रतीत होता है कि कोई सर्वनाश की दुर्घटना घटी है ! नहीं तो ऐसे आनन्द के समय में एकदम चित्त में घबराहट और दुःख की भावना क्यों पैदा होजाती ? वत्स, ऐसा क्यों हो रहा है, कहो तो ? मेरा मन कैसा डावाँडोल हो रहा है; मेरी इच्छा अब तपोवन देखने की

भी नहीं रही। जी यही चाहता है कि अब अयोध्या को ही लौट चलो। भला, मैं तुमसे पूछती हूँ कि आर्यपुत्र ने हमारे साथ आने को कहा था, सो वे आवेंगे या नहीं? उनके आने की आशा है या नहीं? रथ में बैठते समय यह बात मैं तुमसे पूछना भूल गई। उनके न आने से ही मेरे मन में सन्देह हो रहे हैं। वत्स, क्या करूँ, बोलो? मेरी चित्त की घबराहट उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। रावण के हर लेजाने के पहले जैसी घबराहट मेरे जी में हुई थी वैसी ही इस समय हो रही है। इस बार भी क्या कोई वैसी ही दुर्घटना होगी? न जाने, क्या सर्वनाश होगा? जी में आता है, तपोवन देखने न आती तो ही अच्छा था। आर्यपुत्र के पास रहने पर कोई दुर्घटना नहीं हो सकती थी। कभी कभी मेरे जी में ऐसी बुरी भावना पैदा होने लगती है कि इस जन्म में आर्यपुत्र का दर्शन अब न होगा।

सीताजी की इस प्रकार घबराहट देखने और दुख-भरे वचनों को सुनने से लक्ष्मणजी भी अत्यन्त दुखी और शोकाकुल होकर बहुत व्याकुल हुए। वे बड़े भारी प्रयत्नों से अपना भाव छिपाकर उदास हो बोले—आर्ये, आप दुखी न हों। परमात्मा हमारा मङ्गल ही करेंगे। ज्ञात होता है, सबको छोड़ कर आई हो, यहाँ कोई पास नहीं, इसलिए अकेली होने के कारण आपका जी घबरा गया होगा। आप अधीर न हों। कुछ देर में सब घबराहट जाती रहेगी। ऐसा सभी को हुआ करता

है। मन बड़ा चञ्चल होता है। सदा एक सा नहीं रहता। इसलिए आप चिन्तित न हूजिए।

लक्ष्मणजी के मलिन मुख और स्वर-वैकल्य का अनुभव करके सीताजी और अधिक दुखी होकर पूछने लगीं—वत्स, तुम्हारी विकलता को देख कर मेरा सन्देह और भी अधिक बढ़ रहा है। मैंने कभी तुम्हारा मुँह ऐसा उदास नहीं देखा। जो कोई अनिष्ट घटना हुई हो तो उसे स्पष्ट कह दो। कहो, आर्यपुत्र तो सानन्द हैं! कल दोपहर के बाद मैंने उन्हें तुम्हारे साथ फिर नहीं देखा। मैं जानती हूँ, उन्हें देखती तो मैं इतनी न घबरा जाती। अब लक्ष्मणजी ने कहा—आर्ये, आप व्याकुल न हों। आपको शोकाकुल और घबराई हुई देख कर मेरा भी जी घबरा उठा था। इसीसे आपको मेरा मुँह मलिन और स्वर विकृत मालूम हुआ होगा। यह देख कर आप अपने जी में विपरीत चिन्ता न कीजिए। जितना सोचोगी, जितना आन्दोलन करोगी, उतनी ही चिन्ता और व्याकुलता बढ़ेगी और उतना ही शोक होगा।

इसी तरह कहते कहते वे गोमती नदी के तट पर जा पहुँचे। उसी समय सारे जगत् को प्रकाशित करने वाले भगवान् कमलिनीपति सूर्य्य अस्ताचल के शिखर पर अधिरूढ़ होगये। सायंकाल के समय गोमती-तीर की बड़ी शोभा हुई। कैसा ही श्रान्त मनुष्य क्यों न हो उस समय वहाँ उसका चित्त भी स्थिर और शान्त होकर अनुपम आनन्द को प्राप्त करने लगता

है। सौभाग्यवश, उस नदी-तट की परम रम्य शोभा को देखकर सीताजी भी अपनी सारी घबराहट भूल गईं। उसे देखते ही सीताजी की सारी घबराहट जाती रही। यह देख कर लक्ष्मणजी को बड़ा हर्ष हुआ। उस रात को वे वहीं रहे। मार्ग के श्रम और चित्त की अस्थिरता के कारण सीताजी बहुत थकी हुई थीं; सुतराम् लेटते ही उन्हें नींद ने दबा लिया। वे सो गईं। जितनी देर वे जागती रहीं उतनी देर लक्ष्मणजी उन्हें ऐसी ऐसी मनोहर बातें सुनाते रहे जिससे उनका मन और कहीं न गया। सारांश यह कि सीताजी दिन में जैसी अधीर और व्याकुल थीं रात में वैसी नहीं रहीं।

प्रातःकाल होते ही वह वहाँ से आगे चल दिये। सीताजी इधर उधर रमणीय दृश्यों की शोभा को देख कर अपार आनन्दित हुईं। पहले दिन जैसी उत्कण्ठा और अधीरता उन्हें हुई थी उस दिन वैसा होने की कोई बात दिखाई नहीं दी।

अन्त में भागीरथी गंगा के तट पर रथ जा पहुँचा। गंगा के पार उतार कर जन्म भर के लिए सीता का परित्याग करना होगा—इस बात का स्मरण करके लक्ष्मणजी के हृदय में शोक-सागर की बड़ी बड़ी लहरें उठने लगीं। अब उनसे और बात न छिपाई गई और न आँसू रुक सके। यह देख सीताजी बड़ी दुखी होकर पूछने लगीं—वत्स, किस कारण तुम्हारा भाव ऐसा हो रहा है, कहो तो? तब लक्ष्मणजी ने आँसू पोंछ कर कहा—आर्ये, आप व्याकुल न हों; चिरकाल में भागीरथी का दर्शन

करके, अन्तःकरण में कुछ अकथनीय भाव उदित हो गया था, इसीलिए आँखों से आँसू निकलने लगे थे। कपिल मुनि के शाप से हमारे पूर्व पुरुष भस्मीभूत हो गये थे। महात्मा भगीरथ ने कितने कष्ट से गङ्गा को भूमि पर लाकर उपकार किया था—गंगा को देख कर वही बात स्मरण आगई थी। मालूम होता है, उसी कारण मेरा चित्त घबरा गया था। सीताजी बड़ी सरल-स्वभाव और भोली भाली थीं। लक्ष्मणजी के वैसा कहने पर ही सन्तुष्ट हो गईं। गंगा के पार जाने की प्रबल इच्छा से सीताजी शीघ्र उस पार चलने के लिए बार बार लक्ष्मणजी को प्रेरणा करने लगीं। किन्तु गंगा के पार जाते ही जन्म भर के लिए भारी शोक-सागर में फेंक दी जायँगी, यह बात तब तक कुछ भी सीता जी न समझ सकीं।

कुछ देर में नाव आगई। लक्ष्मणजी ने सुमन्त्र को वहीं रथ खड़ा करने के लिए कह कर सीताजी को नाव पर चढ़ा दिया। बहुत शीघ्र नाव दूसरे किनारे पहुँच गई। गंगा पार पहुँच कर सीता जी ने तपोवन के दर्शन की प्रबल इच्छा से शीघ्र आगे चलने का भाव प्रकट किया। तब लक्ष्मणजी ने कहा—आर्ये, तनिक ठहरिए, मुझे कुछ कहना है। मैं इसी जगह आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। इतना कह कर उनका मुँह नीचा हो गया और आँखों से आँसुओं की प्रबल धारा बहने लगी। सीताजी चकित होकर पूछने लगीं—वत्स, 'कुछ कहना है' कह कर ऐसे व्याकुल क्यों होगये? क्या कहना है, शीघ्र कहो। तुम्हारे भाव

को देख कर हमारा मन अधीर हुआ जाता है। जो कहना हो जल्द कहो, हमारे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। चलते समय तुम आर्यपुत्र के विषय में क्या कोई दुर्घटना की बात देख सुन कर आये थे? या कोई और सर्वनाश की बात है? क्या हुआ, शीघ्र कहो? तब लक्ष्मणजी ने कहा—देवि, कहूँ क्या, मुँह से कहा ही नहीं जाता। मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि आर्य की आज्ञा के पालने में मेरे भाग्य में ऐसी घटना घटेगी। जो घटना घटेगी उसका स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। इससे पहले ही मुझे मृत्यु उठा ले जाती तो अच्छा होता। मृत्यु से भी अधिक मेरे लिए कोई बात होती तो वह भी अच्छी ही होती। ऐसा हो जाता तो आज आर्य की धर्मविरुद्ध आज्ञा का पालन तो न करना पड़ता। हा विधातः, मेरे कपाल में क्या यही लिखा था! यह कह कर छिन्नमूल वृक्ष की तरह लक्ष्मणजी भूमि पर गिर कर हाहाकार करने लगे।

लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देख कर सीताजी, कुछ देर तक योंही चौकन्नी सी खड़ी रहीं। उन्होंने अपने अञ्चल से लक्ष्मणजी की आँखें पोंछीं, और कातर हो कर वे कहने लगीं—वत्स, तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो? अपनी मृत्यु का स्मरण किस लिए कर रहे हो? मैं इस समय तुमको बहुत ही घबराया हुआ देखती हूँ। इतना अधीर तो मैंने आज तक तुमको कभी नहीं देखा। कहो, आर्यपुत्र का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ? तुम उनके प्राण हो, तुम्हारी दशा देखने से प्रतीत होता

करके, अन्तःकरण में कुछ अकथनीय भाव उदित हो गया था, इसीलिए आँखों से आँसू निकलने लगे थे। कपिल मुनि के शाप से हमारे पूर्व पुरुष भस्मीभूत हो गये थे। महात्मा भगीरथ ने कितने कष्ट से गङ्गा को भूमि पर लाकर उपकार किया था—गंगा को देख कर वही बात स्मरण आगई थी। मालूम होता है, उसी कारण मेरा चित्त घबरा गया था। सीताजी बड़ी सरल-स्वभाव और भोली भाली थीं। लक्ष्मणजी के वैसा कहने पर ही सन्तुष्ट हो गईं। गंगा के पार जाने की प्रबल इच्छा से सीताजी शीघ्र उस पार चलने के लिए बार बार लक्ष्मणजी को प्रेरणा करने लगीं। किन्तु गंगा के पार जाते ही जन्म भर के लिए भारी शोक-सागर में फेंक दी जायँगी, यह बात तब तक कुछ भी सीता जी न समझ सकीं।

कुछ देर में नाव आगई। लक्ष्मणजी ने सुमन्त्र को वहीं रथ खड़ा करने के लिए कह कर सीताजी को नाव पर चढ़ा दिया। बहुत शीघ्र नाव दूसरे किनारे पहुँच गई। गंगा पार पहुँच कर सीता जी ने तपोवन के दर्शन की प्रबल इच्छा से शीघ्र आगे चलने का भाव प्रकट किया। तब लक्ष्मणजी ने कहा—आर्ये, तनिक ठहरिए, मुझे कुछ कहना है। मैं इसी जगह आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। इतना कह कर उनका मुँह नीचा हो गया और आँखों से आँसुओं की प्रबल धारा बहने लगी। सीताजी चकित होकर पूछने लगीं—वत्स, 'कुछ कहना है' कह कर ऐसे व्याकुल क्यों होगये ? क्या कहना है, शीघ्र कहो। तुम्हारे भाव

को देख कर हमारा मन अधीर हुआ जाता है। जो कहना हो जल्द कहो, हमारे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। चलते समय तुम आर्यपुत्र के विषय में क्या कोई दुर्घटना की बात देख सुन कर आये थे ? या कोई और सर्वनाश की बात है ? क्या हुआ, शीघ्र कहो ? तब लक्ष्मणजी ने कहा--देवि, कहूँ क्या, मुँह से कहा ही नहीं जाता। मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि आर्य की आज्ञा के पालने में मेरे भाग्य में ऐसी घटना घटेगी। जो घटना घटेगी उसका स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। इससे पहले ही मुझे मृत्यु उठा ले जाती तो अच्छा होता। मृत्यु से भी अधिक मेरे लिए कोई बात होती तो वह भी अच्छी ही होती। ऐसा हो जाता तो आज आर्य की धर्मविरुद्ध आज्ञा का पालन तो न करना पड़ता। हा विधातः, मेरे कपाल में क्या यही लिखा था ! यह कह कर छिन्नमूल वृक्ष की तरह लक्ष्मणजी भूमि पर गिर कर हाहाकार करने लगे।

लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देख कर सीताजी, कुछ देर तक योंही चौकन्नी सी खड़ी रहीं। उन्होंने अपने अञ्चल से लक्ष्मणजी की आँखें पोंछीं, और कातर हो कर वे कहने लगीं—वत्स, तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ? अपनी मृत्यु का स्मरण किस लिए कर रहे हो ? मैं इस समय तुमको बहुत ही घबराया हुआ देखती हूँ। इतना अधीर तो मैंने आज तक तुमको कभी नहीं देखा। कहो, आर्यपुत्र का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ ? तुम उनके प्राण हो, तुम्हारी दशा देखने से प्रतीत होता

है कि अवश्य उनका कुछ अनिष्ट हुआ है। मैं अब समझी, इसी कारण कल मेरी वैसी दशा हो रही थी। जो हो, वत्स शीघ्र कहो, क्या बात है? शीघ्र कह कर मेरे प्राण बचाओ। मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। शीघ्र कहो, अब विलम्ब न करो। मैं स्पष्ट समझ गई कि मेरा सर्वनाश हो गया। जो ऐसा न होता तो तुम इस समय ऐसे व्याकुल क्यों होते?

सीताजी की इस तरह व्याकुलता और कातरता देख कर लक्ष्मणजी का शोकाग्नि और सौ गुना प्रबल हो उठा। नेत्रों से आँसुओं की अविरल धारा बहने लगी, कण्ठरोध होकर बात भी मुँह से न निकल सकी। कुछ भी हो, अन्त में यह सब कहना ही पड़ेगा—यही सोच कर लक्ष्मणजी बोलने के लिए बार बार चेष्टा करते, किन्तु किसी प्रकार भी उनके मुँह से वह निष्ठुर बात नहीं निकली। यह देख कर सीताजी लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर कातर वचन से बार बार अनुरोध करने लगीं—वत्स, और देर न करो, आर्यपुत्र ने जो आदेश किया है, चाहे वह कितना ही कठोर क्यों न हो, उसे शीघ्र कहो! तुम कुछ संकोच न करो। मैं आज्ञा देती हूँ, तुम बेखटके कहो। तुम्हारी बातें सुन कर और भाव देख कर स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवश्य मेरा कर्म फूट गया! क्या हुआ; शीघ्र कहो, और देर न करो। मैं अब इस चिन्तावस्था में और मुहूर्त भर भी नहीं ठहर सकती। जो हो, उसे कह कर मेरे प्राणों की रक्षा करो। मैं कहती हूँ कि आर्यपुत्र का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ? यदि वे सानन्द हों

तो मेरा चाहे सर्वनाश ही क्यों न हो जाय, मैं उससे इतनी व्याकुल नहीं हो सकती। तुम्हें आर्यपुत्र की शपथ है, शीघ्र कहो। तुम और विलम्ब करोगे तो मुझे जीती न देखोगे। यदि दुःख दे कर मुझे मारना न चाहो तो और देर मत करो।

सीताजी की ऐसी दशा देख कर लक्ष्मणजी ने सोचा कि अब और विलम्ब करना ठीक नहीं। तब जैसे तैसे चित्त में कुछ धीरज बाँध कर, बड़ी कठिनता से, लक्ष्मणजी कहने लगे—आर्ये, कहूँ क्या, कहते मेरी छाती फटी जाती है। आप अकेली रावण के घर रही थीं, इसी कारण पुरवासी और राष्ट्रवासी सब आप के चरित्र के शुद्ध होने में संदेह कर रहे हैं और सर्वत्र निन्दा कर रहे हैं। उसे सुन कर आर्य ने, दया, स्नेह और ममता को छोड़ कर, उस निन्दा से बचने के लिए, आप का परित्याग किया है। मुझे उन्होंने यही आज्ञा दी है कि तपोवन दिखाने के बहाने इन्हें, वाल्मीकि मुनि के आश्रम में छोड़ कर चले आना। यही वह वाल्मीकि का आश्रम है।

इतना कह कर लक्ष्मणजी मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। सीताजी भी, सुनते ही, वायु के वेग से गिराई हुई कदली की तरह, मूर्च्छित होकर धरातल पर गिर पड़ीं। कुछ देर में जब लक्ष्मणजी को कुछ चेत हुआ तब उन्होंने सीताजी को चेत में लाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया। सचेत हो कर सीताजी उन्मत्त की तरह लक्ष्मणजी के मुँह की ओर देखने लगीं—लक्ष्मणजी हतबुद्धि हो, चित्र की तरह, अधोमुख किये आँसू बहाते हुए

है कि अवश्य उनका कुछ अनिष्ट हुआ है। मैं अब समझी, इसी कारण कल मेरी वैसी दशा हो रही थी। जो हो, वत्स शीघ्र कहो, क्या बात है? शीघ्र कह कर मेरे प्राण बचाओ। मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। शीघ्र कहो, अब विलम्ब न करो। मैं स्पष्ट समझ गई कि मेरा सर्वनाश हो गया। जो ऐसा न होता तो तुम इस समय ऐसे व्याकुल क्यों होते?

सीताजी की इस तरह व्याकुलता और कातरता देख कर लक्ष्मणजी का शोकाग्नि और सौ गुना प्रबल हो उठा। नेत्रों से आँसुओं की अविरल धारा बहने लगी, कण्ठरोध होकर बात भी मुँह से न निकल सकी। कुछ भी हो, अन्त में यह सब कहना ही पड़ेगा—यही सोच कर लक्ष्मणजी बोलने के लिए बार बार चेष्टा करते, किन्तु किसी प्रकार भी उनके मुँह से वह निष्ठुर बात नहीं निकली। यह देख कर सीताजी लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर कातर वचन से बार बार अनुरोध करने लगीं—वत्स, और देर न करो, आर्यपुत्र ने जो आदेश किया है, चाहे वह कितना ही कठोर क्यों न हो, उसे शीघ्र कहो! तुम कुछ संकोच न करो। मैं आज्ञा देती हूँ, तुम बेखटके कहो। तुम्हारी बातें सुन कर और भाव देख कर स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवश्य मेरा कर्म फूट गया! क्या हुआ; शीघ्र कहो, और देर न करो। मैं अब इस चिन्तावस्था में और मुहूर्त भर भी नहीं ठहर सकती। जो हो, उसे कह कर मेरे प्राणों की रक्षा करो। मैं कहती हूँ कि आर्यपुत्र का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ? यदि वे सानन्द हों

तो मेरा चाहे सर्वनाश ही क्यों न हो जाय, मैं उससे इतनी व्याकुल नहीं हो सकती। तुम्हें आर्यपुत्र की शपथ है, शीघ्र कहो। तुम और विलम्ब करोगे तो मुझे जीती न देखोगे। यदि दुःख दे कर मुझे मारना न चाहो तो और देर मत करो।

सीताजी की ऐसी दशा देख कर लक्ष्मणजी ने सोचा कि अब और विलम्ब करना ठीक नहीं। तब जैसे तैसे चित्त में कुछ धीरज बाँध कर, बड़ी कठिनता से, लक्ष्मणजी कहने लगे—आर्ये, कहूँ क्या, कहते मेरी छाती फटी जाती है। आप अकेली रावण के घर रही थीं, इसी कारण पुरवासी और राष्ट्रवासी सब आप के चरित्र के शुद्ध होने में संदेह कर रहे हैं और सर्वत्र निन्दा कर रहे हैं। उसे सुन कर आर्य ने, दया, स्नेह और ममता को छोड़ कर, उस निन्दा से बचने के लिए, आप का परित्याग किया है। मुझे उन्होंने यही आज्ञा दी है कि तपोवन दिखाने के बहाने इन्हें, वाल्मीकि मुनि के आश्रम में छोड़ कर चले आना। यही वह वाल्मीकि का आश्रम है।

इतना कह कर लक्ष्मणजी मूर्च्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। सीताजी भी, सुनते ही, वायु के वेग से गिराई हुई कदली की तरह, मूर्च्छित होकर धरातल पर गिर पड़ीं। कुछ देर में जब लक्ष्मणजी को कुछ चेत हुआ तब उन्होंने सीताजी को चेत में लाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया। सचेत हो कर सीताजी उन्मत्त की तरह लक्ष्मणजी के मुँह की ओर देखने लगीं—लक्ष्मणजी हतबुद्धि हो, चित्र की तरह, अधोमुख किये आँसू बहाते हुए

खड़े रहे। कुछ देर बाद सीताजी के नेत्र-युगल से बाष्प-वारिधारा बहने लगी, दीर्घ निःश्वास आने लगा, और सारा शरीर काँपने लगा। सीताजी की यह दशा देख कर लक्ष्मणजी बड़े व्याकुल हो कर उनको समझाने की चेष्टा करने लगे। किन्तु क्या कह कर समझाया जाय, इसका कुछ उपाय न पाकर, नष्ट-चेतन हो वे भी आँसू बहाने लगे।

इस दशा के थोड़ी देर बाद, जैसे तैसे सीताजी अपने आप ही कुछ धीरज धर कर कहने लगीं—लक्ष्मण, किसे दोष दूँ? सब मेरे ही भाग्य का दोष है। नहीं तो भला, राजा की कन्या, राजा की पतोहू और राजा की पत्नी होकर कोई कभी मेरी तरह चिरदुःखिनी हुई है, कहो तो? ज्ञात होता है, सारे जन्म भर, सारे जीवन भर, दुःख भोगने के लिए ही मुझे स्त्री का जन्म मिला है। वत्स, इसे क्या कोई जानता था कि अन्त में मेरी यह दशा होगी? बहुत समय बाद आर्यपुत्र के साथ मेल होने से मैं सोचा करती थी और जी में भरोसा किया करती थी कि बस, अब दुःखों का अन्त हो गया। पर, मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि विधाता ने मेरे कपाल में सौ गुना दुःख और लिख रक्खा है। हाय विधाता! क्या तेरे जी में यही था?

इतना कहते ही कहते सीताजी का गला रुक गया। वे कुछ देर तक कुछ भी न बोल सकीं। अनन्तर, दीर्घ निःश्वास छोड़ कर बोलीं—लक्ष्मण, मालूम नहीं, पहले जन्म में मैंने कितने भारी पाप किये हैं; नहीं तो विधाता मेरे भाग्य में ऐसे

भारी भारी दुःख क्यों लिखता ? अथवा विधाता ही का क्या अपराध है ? सब अपने अपने कर्मों का फल पाते हैं। मैंने जन्मान्तर में जैसे कर्म किये हैं, वैसे ही फल इस जन्म में पा रही हूँ। मैं समझती हूँ, मैंने पहले जन्म में अवश्य किसी पति-प्राणा कामिनी को पति से अलग किया होगा। उसी महा-पाप से आज मेरी यह दुर्दशा हो रही है। नहीं तो, आर्यपुत्र का हृदय दया और प्रेम से परिपूर्ण है। वे भली भाँति जानते हैं कि मैं पति-परायणा और शुद्धाचारिणी हूँ; तथापि ऐसे समय में उन्होंने मुझे त्यागा है—यह सब मेरे पहले कर्मों का ही फल है, और कुछ नहीं। वत्स, मैं वनवास से दुःखी नहीं। आर्यपुत्र के साथ मैं बहुत काल तक वन में रही हूँ, उनके साथ वन में मुझे लेश मात्र भी दुःख नहीं हुआ। उनके साथ मुझे कहीं भी दुःख नहीं मिल सकता। जो हो, मेरे जी में यही दुःख है कि आर्यपुत्र ने मुझे किस अपराध में निकाला है। जब मुनि-पत्नी मुझ से पूछेंगी तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी ? वे सब आर्यपुत्र को करुणासागर जानती हैं। जब मैं यह सत्य बात उनसे कहूँगी तब वे मेरा विश्वास न करेंगी। वे अवश्य यही समझेंगी कि सीता ने ही कोई घोर पाप किया होगा, जिस कारण उन्होंने उसे त्याग दिया। वत्स, कहते क्या हो, यदि मैं गर्भवती न होती तो इसी समय गंगा की बीच धारा में खड़ी हो कर प्राण तज देती। तुम्हीं कहो, अब, इस दशा में मेरे और जीने से क्या लाभ ? ऐसी दशा में क्या जीवन धारण करना योग्य है ?

मुझे यही आश्चर्य है कि अपने त्याग की बात सुन कर भी मेरे प्राण नहीं निकले। मालूम होता है, मेरे सिवा और किसी के प्राण ऐसे कठोर नहीं हैं; नहीं तो इसी समय क्यों न निकल गये। अथवा विधाता ने ही मुझे चिरदु:खिनी बनाया है। प्राण-त्याग होने पर उसका वह सङ्कल्प विफल हो जाता; इसी कारण मेरे प्राण नहीं निकलते।

इसी तरह विलाप और परिताप करती हुईं सीताजी दीर्घ नि:श्वास छोड़ "हा क्या हुआ !" कह कर फिर मूर्च्छित हो गईं; और धरती पर गिर पड़ीं। यह सब विलाप और रोदन देख सुन कर बेचारे लक्ष्मणजी, शोक से परितप्त हो कर नेत्रों से अश्रु बहाने लगे और श्रीरामचन्द्रजी के अदृष्टपूर्व और अश्रुतपूर्व प्रजारञ्जन-कार्य्य को ही इस सारे अनर्थ का मूल समझ कर, बड़े भारी शोक-विह्वल हो कहने लगे—यदि इस समय से पहले ही मेरी मृत्यु हो जाती तो यह लोक और धर्म के विरुद्ध विषम-काण्ड तो देखने में न आता। मैं आर्य की आज्ञा को मान कर बड़ा बुरा काम कर रहा हूँ। मेरे समान पापी और पाखण्डी कोई और नहीं, नहीं तो ऐसे कठिन काम के करने का भार मैं अपने सिर काहे को लेता ? हाय ! मैंने इस पतिप्राणा, सरलस्वभावा और शुद्धाचारिणी जानकी को यह कैसे सर्वनाश का समाचार सुना दिया ! यदि मैं अपने बड़े भाई की बात न मानता और उनका बुरा भी बन जाता तथा नरक में भी पाप-भोग करना पड़ता, तो

वह भी मुझे इतना दुःखदायक न होता, जितना कि यह हो रहा है। उनकी बात मान कर मैंने बड़ा बुरा काम किया। हाय! मुझ से इस समय बड़ा घोर दुष्कर्म हो गया! हा विधातः! तुमने ऐसे काम का भार लेने के लिए मेरी बुद्धि क्यों की? हा वज्र-हृदय! तू इस समय फट क्यों नहीं जाता? हा कठोर प्राण! तुम इस समय क्यों नहीं प्रयाण कर जाते? हा दग्ध देह! तू अभी तक विनष्ट क्यों नहीं हुआ! हाय! मैं अब और आर्या की दुःखावस्था नहीं देख सकता। हा आर्य, मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि तुम ऐसे कठोर-हृदय हो। हा आर्य, यदि तुम्हें यही अभीष्ट था तो सीताजी की खोज के लिए इतनी चेष्टा क्यों की थी? रावण के हर ले जाने के पश्चात् उन्मत्त और विरह-कातर होकर इधर उधर वन में क्यों हाहाकार करते फिरते थे? यदि आप पहले ही अपने मन की कह देते तो हम लोग किस कारण राक्षसों के साथ घोर युद्ध में दुःसह दुःख उठाते! क्यों वहाँ सैकड़ों, सहस्रों की जान जाती! अस्तु, तुम्हारे समान निर्दय और निन्दनीय मनुष्य कोई नहीं।

कुछ काल तक इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के विचार की निन्दा करके लक्ष्मणजी अपने शोक के वेग को रोक कर सीताजी की मूर्च्छा दूर करने का प्रयत्न करने लगे। बहुत कुछ उपाय करने पर जब सीताजी की मूर्च्छा दूर हुई तब वे लक्ष्मणजी से कहने लगीं—वत्स, धैर्य धारण करो। अब विलाप और परिताप मत करो। सब कोई भाग्य के अधीन है। जो कुछ मेरे भाग्य में

था वह सब भोगना पड़ेगा। तुम इसके लिए अब शोककातर मत हो। शोक दूर करो। मेरा स्मरण दूर करके अब तुम शीघ्र आर्यपुत्र के समीप जाओ। मेरा परित्याग करने से वे अधीर और शोक-विह्वल होंगे, इसमें सन्देह नहीं। तुम वहाँ जाकर ऐसा काम करना जिससे उनका शोक दूर हो और मेरे विरह का दुःख उनको न सतावे। उनसे कहना कि मेरे परित्याग करने का कुछ दुःख न मानें। यह काम अच्छा ही हुआ है, बुरा नहीं। प्राणपण से भी राजा का प्रधान धर्म प्रजारञ्जन करना ही है। मुझे त्याग कर उन्होंने अपने राजधर्म का पालन किया है। मैं उनके जी की जानती हूँ। उन्होंने जो किया है सब प्रजा की प्रसन्नता के लिए ही किया है। यही राजा का परम धर्म है। उनको चाहिए कि शोक और मोह त्याग कर प्रसन्नता से प्रजा का पालन करें। उनके चरणों में मेरा प्रणाम करके, मेरी ओर से निवेदन करना कि मुझे अयोध्या से तो आपने निर्वासित कर दिया है; परन्तु अपने मन से निर्वासित मत कर देना। मैं यहाँ तपोवन में रह कर एकान्त में इसलिए तपस्या करूँगी कि अगले जन्म में भी मैं आपको ही पति पाऊँ और सदा आपकी ही दासी बनूँ। और उनसे विशेष करके यह कहना कि यद्यपि स्त्री-भाव से आपने मेरा परित्याग किया था तथापि मुझे साधारण प्रजा अवश्य जानिएगा। क्योंकि आप समुद्र तक पृथ्वी के अधीश्वर हैं, इसलिए मैं जहाँ रहूँगी वहाँ आपके ही अधिकार में रहूँगी—आप के अधिकार से बाहर नहीं जा सकती।

इतना कहने पर सीताजी को शोक ने दबा लिया। वे कुछ देर तक चुप रह कर फिर बोलीं—लक्ष्मण ! मैं अपने त्याग और वनवास से दुःखी नहीं हूँ; प्रत्युत आर्यपुत्र के मन में क्लेश और शोक होगा, इसी कारण मुझे इस समय अत्यन्त खेद हो रहा है और इसी लिए मेरा धैर्य टूटा जा रहा है। उनसे विनय-पूर्वक कहना कि आप शीघ्र शोक दूर करके निश्चिन्त हो जायँ। आप किसी प्रकार का शोक-मोह न करें। यद्यपि मुझे तपोवन में परित्याग करने से बड़ा दुःख हो रहा है परन्तु इसके लिए भी मैं आर्यपुत्र को दोष न दूँगी। जो कुछ हुआ है वह सब मेरे प्रारब्धानुसार ही हुआ है—यह सोच कर वे कुछ भी शोक न करें। वत्स, तुमसे मेरा आग्रह-पूर्वक यही कहना है कि तुम सदा आर्यपुत्र के साथ ही रहना; क्षण भर के लिए भी उनको अकेला न छोड़ना। अकेले रहने से उनको मेरे वियोग का भारी शोक होगा। उनके सुखी रहने में ही मुझे सुख है। तुम सदा ऐसा यत्न करना जिससे उनको कभी दुःख न हो; वे सदा प्रसन्न-चित्त ही रहें। यह कह कर, लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर सीताजी बड़े दीन वचन से बोलीं— तुम मेरे सामने शपथ खाकर कहो, मैंने जो कुछ तुम से कहा है उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न होगी। जब तक लोगों के मुँह से आर्यपुत्र की कुशलता और सुखी होने का समाचार मैं सुनती रहूँगी तभी तक सुखी रहूँगी; अन्यथा नहीं।

यही कहते कहते सीताजी के नेत्रों से अविरल अश्रु-जल-

धारा बह निकली । अश्रु-जल से सीताजी का हृदय-स्थल तर हो गया । लक्ष्मणजी को समझा कर सीताजी बोलीं—वत्स, तुम शीघ्र आर्यपुत्र के समीप जाओ; अब और विलम्ब न करो । बार बार यही कह सीताजी लक्ष्मण से शीघ्र जाने का आग्रह करने लगीं । लक्ष्मणजी प्रणाम करके, हाथ जोड़ कर सम्मुख खड़े हो गये । आँखों से आँसू गिराते हुए लक्ष्मणजी कहने लगे— आर्ये, तुम सदा से देखती आई हो कि मैं आर्य का परम आज्ञाकारी हूँ । जब जो आज्ञा वे करते हैं, मैं उसी समय उसका पालन करता हूँ । प्राणान्त स्वीकार करके भी बड़े भाई की आज्ञा का पालन करना छोटे भाई का परम धर्म है । मैं उसी धर्म का विचार करके, आर्य की इस विषम आज्ञा का पालन करने यहाँ आया हूँ । मैंने पत्थर का कलेजा करके जो यह भारी काम अपने सिर लिया था सो अब यह पूरा हो गया । अब प्रार्थना यही है, कि जैसा स्नेह और वात्सल्य तथा कृपा आप अब तक मुझ पर करती रही हैं उसमें भेद न पड़ने पावे । आप आगे भी मुझ पर पूर्ववत् ही कृपा बनाये रक्खें । मैंने बड़े भाई की आज्ञा से आपका जो यह अपराध किया, इसके लिए आप कृपा करके क्षमा करना । इस अपराध की आप से क्षमा माँगता हूँ ।

लक्ष्मणजी को इस प्रकार शोक-युक्त देख कर सीताजी ने कहा—वत्स, तुम्हारा क्या अपराध है ? तुम क्यों इतने दुखी होकर परिताप कर रहे हो ? तुमसे रुष्ट और असन्तुष्ट होना

तो दूर; मैं काय, वचन, मन से सदा ईश्वर से यही प्रार्थना किया करती हूँ कि अगले जन्म में भी तुम सा ही गुणी और सुशील देवर पाऊँ। तुम चिरजीवी हो। तुम अयोध्या में जाकर आर्यपुत्र के पवित्र चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करना। भरत और शत्रुघ्न तथा मेरी बहिनों से भी प्रीति के वचन कहना। जब मेरी सास देवियाँ ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ से लौट कर घर आवें तब उनके चरणों में मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन करना। वत्स, एक बात मैं और कहे देती हूँ। मैं चिर-दुःखिनी हूँ, विधाता ने मेरे प्रारब्ध में मेरे लिए सुख भोगना लिखा ही नहीं। इसीलिए मेरा सर्वनाश हो गया। मैं मारी गई! किन्तु इसके लिए मैं इतनी दुखी नहीं। तुम ऐसा करना जिससे मेरी बहन दुखी न हों। मेरे विरह में वे बड़ी दुखी हो रही होंगी। तुम तीनों भाई ऐसा यत्न करना जिससे किसी प्रकार उनका यह दुःख शीघ्र दूर हो, उनके सुखी रहने में ही मेरे दुःख दूर होंगे। उनसे कहना, मैं अपने भाग्य का, अपने किये का, फल भोग रही हूँ। तुम मेरे लिए शोकाकुल मत होना।

यह कह कर स्नेह से बार बार आशीर्वाद देकर सीताजी ने लक्ष्मणजी से जाने को कहा। लक्ष्मणजी ने नेत्रों में जल भर कर गद्‌गद वाणी से, हाथ जोड़ कर, चलते समय एक बार फिर कहा कि 'आर्यें' मेरा अपराध क्षमा करना'। यह कह कर लक्ष्मणजी नाव पर सवार हो चल दिये। जाते हुए लक्ष्मणजी को टकटकी बाँध कर सीताजी देखने लगीं। नाव बहुत शीघ्र दूसरी पार

पहुँच गई। पार उतर कर लक्ष्मणजी ने सीताजी को फिर देखा और आँसू बहाते हुए रथ पर सवार हो गये। रथ चल पड़ा। जब तक सीताजी दिखलाई देती रहीं, तब तक लक्ष्मणजी बराबर उन्हें देखते ही रहे। सीताजी भी बराबर स्थिर-दृष्टि से रथ को देखती रहीं। धीरे धीरे रथ दूर निकल आया। तब, सीताजी को न देख कर लक्ष्मणजी सिर पीट कर हाहाकार करते हुए रोने लगे। रथ न देख कर सीताजी भी ऊँचे स्वर से रोने और विलाप करने लगीं।

सीता के विलाप और रोने का शब्द समीप ही रहनेवाले ऋषिकुमारों के कानों में पहुँचा। वे लोग उनका रोना सुन कर वहाँ आये। उन्होंने आकर देखा तो एक महारानी को हाहाकार और सिर पीट पीट कर विलाप करते पाया। ऋषि-मुनियों के बालकों ने देखा कि एक स्त्री बड़ी दुखी हो हो कर विलाप और रुदन कर रही है। उनके रोने पीटने को देख कर देखनेवालों के कोमल हृदय दया से भर गये। उन्होंने शीघ्र वहाँ से जाकर महर्षि वाल्मीकिजी से नम्रतापूर्वक निवेदन किया। उन्होंने कहा—भगवन्! हम लोग फल, फूल, कुशा और समिधा लेने के लिए गंगा के किनारे वन में गये थे। वहाँ अकस्मात् हमें एक स्त्री के रोने का शब्द सुनाई दिया। हमने इधर उधर देखा तो वहाँ एक स्त्री को विलाप करते और रोते पाया। वह स्त्री अलौकिक रूप-शोभा से सम्पन्न है। वेष-भूषा से तो वह कोई महारानी सी मालूम होती है। वह अनाथ

की तरह रो रो कर घोर विलाप कर रही है। उसका सौन्दर्य्य ऐसा विलक्षण है, मानो दूसरी लक्ष्मी ही हो। वह कौन है, किसलिए वहाँ अकेली रोदन कर रही है, कुछ समझ में नहीं आया। उसके करुणा-भरे परिताप और हाहाकार को सुन कर हमारा हृदय फटा पड़ता था। उसकी कातर दशा देख कर हमसे वहाँ कुछ उससे पूछा भी नहीं गया। अन्त में हमने आप को इसका समाचार सुना देना ही उचित समझ कर यह निवेदन किया। अब जो उचित हो सो कीजिए।

ऋषिकुमारों के मुँह से यह बात सुन कर महर्षि उसी समय भागीरथी के तीर पर जा पहुँचे। सीताजी के सामने खड़े होकर बड़े प्रशान्त और गम्भीर स्वर से कहने लगे—वत्से, विलाप को दूर करो। तुम्हारे तपोवन में आने का कारण हमें पहले ही विदित हो चुका है। तुम मिथिला-नरेश राजर्षि जनक की पुत्री, कोशलाधिपति महाराजा दशरथ की पुत्र-वधू और राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी की धर्म-पत्नी हो। तुम्हारे स्वामी ने, निर्मूल लोकापवाद को सुनकर, अस्थिर-चित्तता से, भले बुरे का कुछ भी विचार न करके, तुमको बिना अपराध यहाँ निकाल दिया है।

महर्षि के समझाने से सीताजी ने आँसू पोंछे और अपने कंधे पर पड़े हुए कपड़े से उनके चरण छुए। महर्षि ने कुल-श्रेष्ठ पुत्र पैदा होने का आशीर्वाद देकर कहा—वत्से, अब यहाँ से उठ कर हमारे आश्रम में चलो। मैं तुमको पुत्री की तरह कर तुम्हारा पालन-पोषण करूँगा। वहाँ तुमको किसी

प्रकार का कष्ट न होगा। नगर-निवासी लोग वन का नाम सुन कर डरा करते हैं, परन्तु यहाँ किसी प्रकार का डर नहीं है। हमारे तप के प्रभाव से यहाँ के हिंसक जीव भी अपने स्वाभाविक हिंसा के गुण को भूल कर परस्पर बड़े प्रेमभाव से रहते हैं। कोई किसी को कष्ट नहीं देता। तपोवन की ऐसी महिमा है कि थोड़ी देर रहने से भी मनुष्यों को अपार आनन्द मिलता है। मैं जानता हूँ कि तुम गर्भवती हो और तुम्हारा गर्भ पूर्ण होगया है। तुम्हारे सन्तान होने पर उसके संस्कार आदि में भी यहाँ किसी प्रकार की त्रुटि न होगी। सब काम विधिवत् हो जायँगे। तुम्हारे बराबर की यहाँ पर और भी मुनि-कन्यायें हैं। उनके साथ तुमको कुछ दुःख न होगा। उनके साथ रह कर तुमको बड़ा आनन्द मिलेगा और तुम्हारा जी भी लग जायगा। तुम्हारे पिता भी हमारे बड़े मित्र हैं। इसलिए हमारे आश्रम में तुमको वैसा ही सुख मिलेगा जैसा पिता के घर मिलता। मैं अपनी पुत्री की तरह तुम्हारा पालन करूँगा। तुमको कष्ट न होने दूँगा। अतएव वत्से, अब देर न करो, उठो, हमारे साथ चलो।

यह कह और सीताजी को साथ लेकर महर्षि तपोवन में चले गये। सीताजी के आने का संवाद उन्होंने सबको सुना दिया और सम-वयस्का मुनि-कन्याओं को सीताजी की देख-भाल करने पर नियत कर दिया। सीताजी से मिल कर मुनि-कन्यायें भी बड़ी प्रसन्न और सन्तुष्ट हुईं। वे सब ऐसा यत्न करने लगीं कि जिससे सीताजी का वियोग-दुःख शीघ्र दूर हो जाय।

पाँचवाँ परिच्छेद

सीताजी को वनवास देकर श्रीरामचन्द्रजी बड़े ही अधीर और शोकाकुल हुए। उनके वियोग के दुःख में उन्होंने आहार-विहार और राज्य की देख-भाल आदि के जितने आवश्यक काम थे, सब त्याग दिये। यहाँ तक कि उन्होंने लोगों से मिलना तक छोड़ दिया। वे अलग एक स्थान में रहने लगे। जहाँ वे रहते थे वहाँ सब किसी को जाने की आज्ञा न थी। वे सीताजी को नितान्त शुद्धाचारिणी जानते थे और बहुत प्यार करते थे। वास्तव में उन दोनों के एक-मन और एक-प्राण थे; केवल शरीर ही भिन्न भिन्न थे। जिस प्रकार सीताजी साधु-स्वभावा और सुशीला थीं उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी भी सर्वांश में तदनुरूप ही थे। सीताजी जिस प्रकार पति-प्राणा, पति-हितैषिणी और सदा पति के सुख में ही सुख मानती थीं, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी भी सीताजी के शुभाशुभ में अपना शुभाशुभ जानते थे। वे सीता के शुभचिन्तक और उनके ही सुख में सुख माननेवाले थे। राज्यभोग करते हुए वे जितने आनन्दित रहते थे उससे भी अधिक वे वनवास में सुखी रहे। बात यह थी कि वनवास में पति-पत्नी एकत्र थे। वनवास के समाप्त होने पर घर में रहते हुए उन दोनों में परस्पर अपार

प्रेम और स्नेह बढ़ गया था। दोनों ही परस्पर एक दूसरे को क्षण मात्र के लिए अलग नहीं होने देते थे। श्रीराम-चन्द्रजी ने केवल प्रजा के असन्तुष्ट हो जाने के भय से बड़ी कठोरता के साथ सीताजी का परित्याग किया था। इसी कारण, सीता-परित्याग से उनका चित्त सहसा अधीर और शोकाकुल हो उठा।

श्रीरामचन्द्रजी को जितनी आन्तरिक वेदना सीताजी के परि-त्याग करने पर हुई उसकी कुछ सीमा नहीं रही। उनको अपार क्लेश हुआ। वे अनेक प्रकार से विलाप और परिताप करने लगे। विलाप करते हुए वे कहते थे कि, मैंने राजवंश में क्यों जन्म लिया, मैं वनवास से लौटकर यहाँ क्यों चला आया; मैंने आकर फिर राज्यभार क्यों ले लिया, और मैंने प्रजा की सम्मति जानने के लिए दुर्मुख को क्यों नियुक्त किया; मैंने लक्ष्मण के उपदेश के अनुसार क्यों न काम किया, मैंने निष्ठुरता से सीता का क्यों परित्याग कर दिया; मैं असार राज्यभार को छोड़ कर सीता के साथ ही वन को क्यों नहीं चला गया? क्या कह कर मन को समझाऊँ? क्या सोच कर प्राणों को धारण करूँ? प्यारी को वनवास देने से तो मेरा आत्मघात करके मर जाना ही अच्छा था; इत्यादि बातें कह कर श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे। उस शोकाग्नि के अधिक प्रज्वलित होने से श्रीरामचन्द्रजी का शरीर सूखकर आधा रह गया।

सीताजी का परित्याग करके लक्ष्मणजी तीसरे दिन, मध्याह्न

समय, अयोध्या में पहुँचे। वे सब से पहले श्रीरामचन्द्रजी के मन्दिर में गये। वहाँ जाकर सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। आँखों से आँसू बहाते हुए गद्‌गद स्वर से कहने लगे—आर्य, दुरात्मा लक्ष्मण आप की आज्ञा का पालन कर आया। इतना सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी "हा प्रेयसि ! सीते!" कह कर मूर्च्छित हो भूतल पर गिर पड़े। यद्यपि लक्ष्मणजी स्वयं अत्यन्त शोकातुर थे तथापि श्रीरामचन्द्रजी की मूर्च्छा दूर करने का उपाय करने लगे। जब उन्हें कुछ चेत हुआ तब थोड़ी देर तक वे लक्ष्मण का मुँह देखते रहे। फिर हाहाकार और दीर्घ निःश्वास छोड़ कर बोले—भाई लक्ष्मण, तुम जानकी को कहाँ छोड़ आये ? मैं उनके विरह में कैसे प्राण धारण करूँ ? यह वेदना मेरे लिए सह्य नहीं है—ऐसा कह कर वे लक्ष्मण के गले में हाथ डाल ऊँचे स्वर से रोने लगे। कुछ स्वस्थ होने पर, श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी के मुँह से सीता-परित्याग का सब वृत्तान्त सुन लिया। सुन कर उनकी आँखों से इतना जल गिरा कि उनका समस्त हृदयस्थल भीग गया; शोक में गद्‌गद वाणी हो गई, यहाँ तक कि कण्ठरोध हो गया और बोलने की भी शक्ति न रही। फिर शोक-सागर उमड़ आया और उसके वेग को न सह कर श्रीरामचन्द्रजी दुबारा अचेत हो कर भूतल पर गिर पड़े।

लक्ष्मणजी ने उन्हें फिर सचेत किया और वे मन ही मन कहने लगे कि इस समय आर्य को जितना क्लेश हुआ है उतना और कभी नहीं हुआ। इस समय इनके शोक को दूर करने का

कोई उपाय नहीं दिखाई देता। जो हो, समझाने की चेष्टा अवश्य करनी चाहिए। यही सोचकर लक्ष्मणजी बड़ी नम्रता और प्रीति से बोले—आर्य, आप जैसे महापुरुषों को शोक और मोह में इतना अधीर होना उचित नहीं। आप बड़े ज्ञानी हैं। आप सब कुछ जानते हैं। जो कुछ होनहार था, सो हो गया; नहीं तो यह किसी को भी विश्वास न था कि आप सीताजी का परित्याग करेंगे। आप विचार कर देखिए कि संसार में कोई भी चिरकाल तक नहीं रहता। संसार में बड़ी भारी अस्थिरता है। वृद्धि होते ही क्षय होता है, उन्नति होने पर अवनति होती है, संयोग होने पर वियोग होता है और जीवन होने पर मरण होता है। ये सब बातें सदा से इसी प्रकार होती आई हैं। इसमें कभी इधर उधर नहीं होता। यही सब सोच कर आप शोक को दूर कीजिए। विशेष कर आपने तो लोक के हित के लिए शासनभार ग्रहण किया है। इसलिए आपको शोक में इतना अधीर होना ठीक नहीं जँचता। मैं जानता हूँ कि प्रिय-वियोग और अप्रिय-संयोग शोक का कारण होता है; किन्तु आप जैसे महानुभावों को इतना शोकाकुल होना कदापि उचित नहीं है। मूर्ख मनुष्य शोक में विकल हो जाया करते हैं, धीर और विचारशील नहीं। आप धीर और विचारशील हैं, इसलिए आप धैर्य धारण करके शोक को मन से हटा कर राज-काज में ध्यान दीजिए। आपको एक बात यह भी सोचना चाहिए कि प्रजारञ्जन के लिए ही तो आपने सीताजी का परित्याग किया है। आर्या को घर में रखने

से प्रजा रुष्ट होगी—इसी शंका से आपने देवी को वनवास दिया है। अब उसके लिए शोक करना उचित नहीं प्रतीत होता। यदि आप उनका त्याग कर भी शोक, विलाप और परिताप करेंगे तो प्रजा की वह शंका दूर न होगी। अतएव, जिस दोष को दूर करने के लिए आपने यह दुष्कर कर्म किया है, वह दोष फिर भी बना रहेगा। सीताजी के परित्याग का कुछ भी फल न होगा। यह भी सोच देखिए कि जितने दिन आप शोक में व्याकुल रहेंगे उतने दिन राज-काज सब बन्द रहेगा। प्रजा के कामों की देख-भाल न की जायगी तो राजधर्म का पालन न हो सकेगा। इस लिए सब प्रकार सोच-विचार करने से यही उचित प्रतीत होता है कि इस समय आप धैर्यावलम्बन करें और सब शोक-मोह को त्यागें। गई बात या किये हुए काम के विषय में अधिक शोक या सोच-विचार करने में समय गँवाना व्यर्थ ही है।

लक्ष्मणजी के इस प्रकार कह चुकने पर श्रीरामचन्द्रजी कुछ देर चुप रह कर फिर बड़े स्नेह से बोले—वत्स, तुम्हारे उपदेश-वाक्यों को सुन कर मुझे बड़ा ज्ञान हुआ है। तुम ठीक कहते हो। मैंने सीता का त्याग करके जो निन्दित और अन्याय का काम किया है अब उसके लिए शोक करने से कुछ फल नहीं। शोक करने से, जिस लिए यह काम किया है, वह सब मिट्टी हो जायगा। फिर किया कराया सब धूल में मिल जायगा। विशेष कर शोक का यही धर्म है कि जितना शोक किया जाय उतना ही और बढ़ता है। शोकयुक्त मनुष्य को अभीष्ट लाभ तो होता ही नहीं,

प्रत्युत कर्तव्य कर्म का ज्ञान न रहने से उसके हाथ से दुराचार ही होने की प्रायः सम्भावना रहा करती है। इसलिए, मैं अब से शोक को दूर करने का प्रयत्न करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब और शोक में व्याकुल न हूँगा। अब मुझे कोई भी आगे शोकाकुल न देखेगा। मन्त्रियों से कह दो कि कल से मैं यथावत् राज्य के कार्यों का निरीक्षण करूँगा। सब राज-कर्मचारियों को सूचित कर देना चाहिए कि कल सब लोग अपने अपने काम पर तत्पर होकर कार्यालय में, यथासमय, उपस्थित हों।

इतना कह कर श्रीरामचन्द्रजी अधोमुख करके कुछ देर मौन धारण किये रहे। तदनन्तर आँखों में आँसू भर कर कहने लगे—हाय! राजत्व भी कैसा विषम दुःख और विपद् का स्थान है? लोक में कोई कैसे सुख भोगने के लिए राज्याधिकार की इच्छा कर सकता है, कुछ समझ में नहीं आता। राज्य ग्रहण करके मेरा इस जन्म भर का सुख-चैन जाता रहा। महाकठोरता से मैंने निरपराधिनी सीता को वनवास दे दिया। अब उसके लिए रोना धोना या आँसू बहाना भी उचित नहीं जान पड़ता। राजत्व प्राप्ति से मेरे लिए यही फल निकला दिखाई देता है, कि मुझ में स्नेह, दया, ममता और मनुष्यत्व कुछ भी नहीं रहा। आगे के लोग मुझे पापी, राक्षस और तुच्छ ही समझेंगे। सब यही कहा करेंगे कि राम बड़ा राक्षस और निर्दयी था।

इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी को बिदा कर

दिया। अगले दिन, प्रतिज्ञानुसार, कार्यालय में जाकर वे राजकार्य की पर्यालोचना करने लगे। वे राजकार्य की देख-भालकरने लगे सही, और लोग यह भी समझने लगे कि श्रीरामचन्द्रजी बड़े धीर हैं जिन्होंने ऐसे भारी शोक को इतना शीघ्र दूर कर दिया। परन्तु, उनके अन्तःकरण में अपनी प्रियतमा के वियोग का अपार दुःखसागर उमड़ रहा था। उनका हृदय शोकाग्नि से निरन्तर प्रज्वलित रहता था। नितान्त निरपराधिनी प्रिया को वनवास दे देने का शोक और क्षोभ उनके हृदय में, विषैले बाण की तरह, निरन्तर वेदना पहुँचाने लगा। केवल प्रजा के प्रसन्नतार्थ ही सीताजी का परित्याग किया था, इसी कारण श्रीरामचन्द्रजी प्रजावर्ग के रुष्ट हो जाने के भय से, अपने उमड़े हुए शोक को बाहर से दबाये रहते थे। जिस समय राज-सिंहासन पर बैठ कर मूर्तिमान् धर्म की तरह, स्थिरचित्त होकर वे राज्यकार्यों की पर्यालोचना किया करते थे उस समय उनकी धीरता को देख कर सारी प्रजा यही कहा करती थी कि इनके समान धीर पुरुष भूमण्डल में और दूसरा कोई नहीं है। किन्तु राजकार्य से निवृत्त होकर जब वे अपने भवन में आते थे तब शोक से बड़े व्याकुल हो जाते थे। लक्ष्मणजी सदा समीप ही रहते थे, इस लिए वे प्रायः उन्हें समझाते रहा करते थे। परन्तु लक्ष्मणजी के भी समझाने से उनका प्रबल शोक शान्त न होता था, प्रत्युत और बढ़ता जाता था। तात्पर्य यह कि वे केवल हाहाकार, अश्रुमोचन, आत्म-निन्दा और सीताजी के गुण-

कीर्तन में ही सारा समय बिताते थे। इस प्रकार सीताजी के विरह-शोक में व्याकुल रहने के कारण, श्रीरामचन्द्रजी, दिन दिन कृश, मलिन, दुर्बल और सब कामों में निरुत्साह रहने लगे। वस्तुतः प्रजाकार्य को छोड़ कर और किसी काम में उनका उत्साह ही नहीं रहा। सब कामों से जी उच्चाट हो गया।

इधर तो यह शोक छाया हुआ था और उधर सीताजी के दो जोड़िया (युग्म) कुमार पैदा हुए। महर्षि वाल्मीकिजी ने उन दोनों कुमारों के जात-कर्मादि संस्कार विधिपूर्वक समाप्त करके, बड़े का नाम कुश और छोटे का लव रक्खा। सीताजी के सन्तान उत्पन्न होने का मङ्गल-समाचार पाकर मुनियों की कन्यायें बड़ी प्रसन्न हुईं। समस्त आश्रम में बड़ा आनन्द-कोलाहल हुआ। दुःसह्य प्रसव-वेदना के कारण सीताजी को कुछ देर तक मूर्च्छा आगई थी। जब कुछ देर बाद थोड़ी सी चेतनता हुई तब मुनि-कन्याओं ने बड़े हर्ष में होकर सीताजी से कहा—जानकि, आज बड़े आनन्द का दिन है। ईश्वर की कृपा से आज तुम्हारे बडे रूपवान् दो कुमार उत्पन्न हुए हैं। यह सुन कर सीताजी को अपार हर्ष हुआ। किन्तु कुछ देर में वह शोकसागर में इतनी निमग्न हुईं कि अश्रु-जल-धारा बहने लगी। यह देख कर मुनि-कन्यायें उनसे पूछने लगीं कि अयि जानकि, ऐसे परम आनन्द के समय में तुम शोकाकुल क्यों हो रही हो? शोक से जानकीजी का कण्ठ रुँध गया। वे कुछ देर तक मुँह से कुछ

भी बात न निकाल सकीं। थोड़ी देर में शोक को कम करके वे कहने लगीं—प्यारी बहनो, क्या तुम्हें मालूम नहीं जो इस प्रकार पूछती हो ? पुत्र उत्पन्न होने के आनन्द से बढ़ कर कोई आनन्द संसार में स्त्रियों के लिए नहीं है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। परन्तु कैसे आपत्काल में मेरे पुत्र पैदा हुए हैं ! मैं ऐसे दुःख के समय पुत्रोत्सव का आनन्द कैसे मना सकती हूँ। हाय ! मेरा तो सारा सुख, सारा आनन्द जन्म भर के लिए फीका पड़ गया। यदि ये अभागे मेरे गर्भ में न होते तो जिस समय मेरे परित्याग की दुःख-वार्ता लक्ष्मण ने सुनाई थी, उसी समय मैं गंगा में डूब कर मर जाती या और किसी प्रकार से अपनी हत्या करके इस असह्य दुःख से छुटकारा पा लेती। अब तो मैं जीने योग्य नहीं रही। मैं अब संसार में मुँह दिखाने के योग्य भी नहीं रही !

इतना कह कर सीताजी शोक से व्याकुल हो गईं। उनके नेत्रों से आँसुओं की प्रबल धारा बहने लगी। मुनि-कन्यायें भी इस प्रकार हृदय-विदारक विलाप सुन कर बड़ी दुःखित हुईं। वे दुःखित हो कर प्रीति-भरे वाक्यों में कहने लगीं—प्रिय सखि, शोक दूर करो। तुम जो कहती हो सो सब ठीक है; परन्तु तुम्हारी यह दशा चिरकाल तक नहीं रहेगी। राजा रामचन्द्र को बुद्धि-भ्रम हो गया था, जिससे तुम्हारे साथ, कर्तव्याकर्तव्य का विचार किये बिना, ऐसा घोर काम किया। आज तक हमने उनके सिवा और किसी को ऐसा

काम करते न देखा, न सुना। हमने अपने पिता के मुख से सुना है कि श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र तुमको ग्रहण करेंगे। इस लिए अब शोक को दूर करो। मुनि-कन्याओं के समझाने पर सीताजी के नेत्रों से और भी अधिक अश्रु-जल गिरने लगा। यह कारुणिक दृश्य देख कर मुनि-कन्याओं के कोमल हृदय द्रवीभूत हो गये। उस समय वे भी सब शोक में व्याकुल होकर आँखों से आँसू गिराने लगीं।

इतने में ही नव-जात कुमार रो उठे। स्नेह और मोह की भी कैसी अद्भुत और मोहिनी शक्ति होती है, कि उनका रोदन सुनते ही सीताजी अपने शोक को एकदम भूल गईं। वे झट उनके चुप करने के लिए, प्रेम से, उनको स्तन-पान कराने लगीं।

दोनों कुमार शुक्लपक्षीय चन्द्रमा के समान दिन दिन वृद्धि को प्राप्त होकर, अपनी जननी के नेत्रों और मन के आनन्द को बढ़ाने लगे। अपने आत्मजों को देख देख कर सीताजी को अपार हर्ष होने लगा। जिस समय वे आधी आधी बात कहते हुए 'मा' 'मा' कहकर पुकारा करते, जिस समय उनके मोती के समान चमकीले दाँतों की पंक्तियों को सीताजी देखतीं, जिस समय उनके मुँह से निकली हुई आधी आधी बातें तोतले शब्दों में सीताजी के कानों में पड़तीं, और जिस समय उनको प्यार से गोद में लेकर उनके मुखारविन्द को चूमतीं, उस समय सीताजी अपना सारा शोक भूल जातीं। उनका सारा शरीर हर्ष से पुलकित हो जाता और दोनों नेत्र प्रेमाश्रु से भर जाते थे।

जब धीरे धीरे कुश और लव पाँच वर्ष के हुए तब महर्षि वाल्मीकि ने चूड़ान्त संस्कार करके उनको विद्यारम्भ कराया।

दोनों कुमार बड़े बुद्धिमान् थे। थोड़े ही दिनों में वे अपनी असाधारण बुद्धि, मेधा और स्मरण-शक्ति के प्रभाव से विविध विद्याओं में विलक्षण विद्वान् हो गये। इससे पहले वाल्मीकिजी ने श्रीरामचन्द्रजी के अलौकिक जीवन-चरित्र के आधार पर 'रामायण' के नाम से एक बड़ा अद्भुत और विस्तृत काव्य निर्माण कर रक्खा था। अपना वह काव्य उन्होंने पहले पहल उन्हीं के पुत्र कुश और लव को पढ़ाया। बालकों ने अल्प काल में ही वह सारा काव्य कण्ठस्थ कर लिया। वे कुमार अपनी माता को वह काव्य सुना सुना कर उनका शोक दूर करने लगे। ग्यारहवें वर्ष में महर्षि ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया और तदनन्तर उनको वेदाध्ययन आरम्भ कराया। एक ही वर्ष के भीतर उन कुमारों ने वेद-शास्त्र में अच्छी विद्वत्ता प्राप्त कर ली। वे पूरे वेदज्ञ हो गये।

धीरे धीरे कुश और लव बारह वर्ष के हुए, परन्तु तब तक उनको इस बात का ज्ञान नहीं हुआ कि हम किसके पुत्र हैं। वे अपने को ऋषि-कुमार और माता को ऋषि-पत्नी ही समझा करते थे। वास्तव में, आश्रम में रहती हुई सीताजी के आचरण ही इस प्रकार के थे कि उन्हें सब कोई ऋषि-पत्नी ही समझते थे। यही नहीं, उन दोनों कुमारों के भी आचार-व्यव-हार और काम ऐसे थे जिन्हें देख कर कोई नहीं कह सकता

था कि ये ऋषि-कुमार नहीं हैं। उन्हें भी सब लोग ऋषि-पुत्र ही समझते थे। बस, इतना ही जानते थे कि सीताजी हमारी माता हैं; किन्तु वे यह न जानते थे कि ये राजर्षि जनक की पुत्री और कोशलाधिपति श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी हैं। बात यह थी कि महर्षि वाल्मीकि ने उनसे ये बातें छिपा रक्खी थीं। उन्होंने और सब आश्रमवासियों से भी कह रक्खा था कि भूल कर भी कोई इनको इन बातों का भेद न बतावे। इसी लिए सीताजी भी अपने निर्वासन की कथा कभी उनके सामने नहीं छेड़ती थीं। उन कुमारों ने उस रामायण काव्य में श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी का विशेष वृत्तान्त पढ़ रक्खा था। परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि यही हमारी माता सीताजी रामचन्द्रजी की धर्म्म-पत्नी सीता हैं। इसी लिए, रामायण में उनकी सारी लीलाओं को पढ़ कर भी वे उनको पहचान न सके। इस प्रकार इतने काल तक वे अपने को पहचानने में असमर्थ ही रहे।

शैशव-काल में, अपने पुत्रों का, सीताजी ने सब जगह से मन हटा कर और सब काम छोड़ कर; बड़े स्नेह से लालन-पालन किया। शैशव-काल निकल जाने पर बालकों के लिए माता के लालन-पालन की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिए, जब कुश और लव शैशव-काल से कुछ आगे बढ़ गये तब सीताजी ने उनके लालन-पालन की विशेष चिन्ता छोड़ दी। अब वे उनकी ओर से निश्चिन्त रहने लगीं। वे भी माता

की कुछ अपेक्षा न करके स्वतन्त्र रहने लगे। ऐसा होने पर फिर सीताजी का समय बहुत करके ऋषि-पत्नियों की तरह तपस्या में ही लगने लगा। वे किसी स्वार्थ के लिए तपस्या नहीं करती थीं। श्रीरामचन्द्रजी की कुशल-कामना ही उनकी तपस्या का उद्देश था। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी ने उनको निरपराध ही घर से निकाल दिया था तथापि सीताजी के जी में एक क्षण के लिए भी अपने पति की ओर से बुरी भावना नहीं हुई। उन्होंने कभी एक बार भी अपने जी में अपने पति को दोष नहीं दिया। उनकी प्रीति बराबर वैसी ही बनी रही जैसी अयोध्या में रहते समय थी। उस दुःख-सागर में पतित होने के लिए वे अपने भाग्य को ही दोष दिया करती थीं। उन आपत्तियों के लिए उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को कभी दोष नहीं दिया। वास्तव में रामचन्द्रजी पर सीताजी की जो भक्ति, श्रद्धा और प्रेम पहले था उसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। वे सदा देवताओं से अपने पति की कुशल-कामना किया करती थीं। यही नहीं, बल्कि अगले जन्म में भी उन्हीं की दासी बनने के लिए वे नित्य प्रार्थना किया करती थीं! दिन तो उनका तपस्यादि करने और मुनि-कन्याओं के साथ बातचीत करने में जैसे तैसे कट जाता था, परन्तु अकेली होने के कारण, रात काटना उनके लिए पहाड़ हो जाता था। वे रात भर श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण करने और रोने-धोने में ही विताती थीं। सीताजी जैसी पति-परायणा थीं, यह देखते हुए किसी को सम्भावना नहीं हो सकती कि उनको पति-विरह-

वेदना कम हुई होगी। कुछ समय बाद सबका शोक, चाहे वह कैसा ही भारी क्यों न हो, अवश्य जाता रहता है। और, यदि बिलकुल जाता भी न रहे तो कम तो अवश्य ही हो जाता है; परन्तु सीताजी का शोक दिन दिन नया होता जाता था। घटने की जगह वह दिन दिन बढ़ता ही जाता था। इसी प्रकार लगातार बारह वर्ष तक शोक-सागर में निमग्न रहने के कारण, सीताजी का समस्त सौन्दर्य्य, समस्त शोभा और समस्त कान्ति अश्रुजल के साथ बह गई। उनके समस्त रूप-लावण्य को विरहाग्नि ने भस्म कर डाला और शरीर भी अस्थिमात्रावशिष्ट ही रह गया।

—:o:—

छठा परिच्छेद

राजा रामचन्द्रजी ने एक बार अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया। वह संकल्प उन्होंने वशिष्ठ, जाबालि, काश्यप, वामदेव आदि महर्षियों पर भी प्रकट कर दिया। उसे सुनते ही वशिष्ठदेव ने बड़े प्रसन्न होकर कहा—महाराज, आपने अच्छा विचार किया। आप सागर तक पृथ्वी के अधीश्वर हैं; आपने अखण्ड भूमण्डल में अपना ऐसा एकाधि-पत्य विस्तृत कर रक्खा है कि जैसा पहले किसी राजा ने नहीं किया। आपके राज्य में प्रजा बड़े सुख-चैन से दिन व्यतीत कर रही है। प्रजा को इतना सुखी और स्वतन्त्र हमने पहले कभी नहीं देखा। राज्य-भार लेकर राजा को जितने कर्तव्य करने चाहिएँ वे सब आपने कर डाले। राजकर्तव्य में केवल अश्वमेध यज्ञ का करना ही एक शेष था। सो इस समय उसके हो जाने पर यह त्रुटि भी पूरी हो जायगी। इसके बाद फिर कोई बात शेष न रहेगी। मैंने भी कुछ दिन से इस बात पर विचार किया था और मेरा भी विचार था कि समय मिलने पर कभी महाराज से अश्वमेध यज्ञ करने के लिए निवेदन करूँ; परन्तु अब आपही अपनी इच्छा प्रकट कर रहे हैं। यह बड़े हर्ष की बात है। इस विषय में अब देर नहीं करनी चाहिए।

अब शीघ्र इस सदनुष्ठान के लिए उपयोगी तैयारी का उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

वशिष्ठजी के कह चुकने पर, पास ही बैठे हुए छोटे भाइयों से श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा कि वत्सगण, गुरुजी महाराज ने जो कहा, वह तुम लोगों ने सुना ? अब तुम लोग भी अपनी अपनी सम्मति प्रकाशित करो कि क्या करना चाहिए। तुम्हारी सम्मति होते ही यह कार्य आरम्भ किया जायगा। सब भाई आज्ञानुवर्ती थे। सुनते ही उन्होंने झट अपनी सम्मति प्रकट कर दी। उन्होंने भी उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया। भाइयों की भी अनुकूल सम्मति सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने वशिष्ठजी से कहा—भगवन्, जब आप सब मेरे प्रस्ताव को स्वीकृत करते हैं और प्रसन्नता से मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं तब अवश्य यह कर्तव्य मुझे पालना चाहिए। अब मेरी यह इच्छा है, कि नैमिषारण्य क्षेत्र में इस शुभ कर्म का अनुष्ठान हो। नैमिषारण्य क्षेत्र परम पवित्र है। वह यज्ञ के लिए उत्तम स्थान है। इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? वशिष्ठजी ने भी यज्ञ के लिए नैमिष क्षेत्र ही उत्तम बताया।

इसके अनन्तर, श्रीरामचन्द्रजी ने छोटे भाइयों से कहा—देखो, अब समय नहीं खोना चाहिए। तुम लोग शीघ्र यज्ञ की तैयारी करो। सब राजाओं को निमन्त्रण भेजो। समय निर्धारण करके, क्या नगरनिवासी और क्या राष्ट्रवासी, सब को इस समाचार की सूचना दे देनी चाहिए। लङ्कायुद्ध में हमारी सहायता

करनेवाले मित्रों को भी बड़े आदर से बुलाना चाहिए। वे हमारे बड़े प्रिय बन्धु हैं। उन्होंने हमारे लिए युद्ध में बड़े बड़े क्लेश सहे हैं। उनके आने से मुझे अपार हर्ष होगा। इनके अतिरिक्त समस्त ऋषियों को निमन्त्रित करो। उनके आने से मैं अपने को बड़ा धन्य मानूँगा। भरत, तुम शीघ्र जाकर नैमिष क्षेत्र में यज्ञभूमि का निर्माण करो। लक्ष्मण, तुम यज्ञ-सम्बन्धी अन्यान्य समस्त सामग्री तैयार करा कर वहाँ शीघ्र पहुँचाओ। देखो, यज्ञोत्सव देखने के लिए वहाँ बड़ा जनसमुदाय एकत्र होगा। इस कारण वहाँ के लिए जो जो आवश्यकीय सामग्री अपेक्षित हो वह सब वहाँ पहुँचानी चाहिए; जिससे वहाँ किसी को किसी प्रकार की असुविधा न हो। तुम सब बातों को भली भाँति जानते हो। तुम्हारे लिए अधिक उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है।

जब इस प्रकार कह कर श्रीरामचन्द्रजी चुप हो गये तब वशिष्ठदेव ने कहा—महाराज, और तो सब प्रबन्ध ठीक ही हो जायगा; किन्तु एक बात की मैं इस में त्रुटि देखता हूँ। एक बात अवश्य अधूरी रह जायगी। तब श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि महाराज! कहिए, आप इसमें क्या त्रुटि देखते हैं? जो बात हो, आप उसे अवश्य कहिए। वशिष्ठजी ने कहा—महाराज, शास्त्रकारों का कथन है कि सस्त्रीक होकर धर्मकार्य का अनुष्ठान करना चाहिए। अतएव, मैं पूछता हूँ कि आपने इस विषय में क्या सोचा है? सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी का मुखमण्डल फीका पड़ गया और आँखें डबडबा आईं। कुछ देर तक वे नीचे को दृष्टि किये

चुप बैठे रहे। थोड़ी देर बाद आँखों से आँसू पोंछ कर और उमड़े हुए शोक के वेग को रोक कर, बोले—भगवन्, इस बात का मुझे अब तक विचार नहीं था। अब क्या करना चाहिए, उपदेश कीजिए। वशिष्ठ देव बहुत देर एकाग्रचित्त होकर सोचते रहे। बहुत कुछ सोच समझ कर कहने लगे—महाराज, दूसरे विवाह के बिना और कोई उपाय मेरी समझ में नहीं आता। आप दूसरा विवाह करके—सस्त्रीक होकर—यज्ञानुष्ठान कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। वशिष्ठजी की बात सुन कर सब लोग चुप हो गये। किसी ने कुछ नहीं कहा। श्रीरामचन्द्रजी महाराज सीताजी को प्राणों से भी प्यारी समझते थे। लोकनिन्दा के डर से वे सीताजी का परित्याग करके जीवन्मृत से हो रहे थे। उन का जैसा शुद्ध प्रेम और स्नेह सीताजी में सदा से था उसमें अभी तक कुछ भी भेद नहीं पड़ा था। सीताजी की मोहिनी मूर्त्ति उनके हृदय में अभी तक बराबर रातदिन वैसी ही जागृत हो रही थी जैसी कि पहले थी। इन सब बातों को देखकर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता था कि श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठजी के दूसरे विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव से सहमत होंगे। जो हो, वशिष्ठजी ने, दूसरा व्याह करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी से बहुत कुछ कहा, बहुतेरा अनुरोध किया; किन्तु उन्होंने वशिष्ठजी की बात स्वीकार नहीं की। दूसरा व्याह करने के लिए वे तैयार न हुए। वे तो एक-पत्नी-व्रती थे। वे दूसरा विवाह करना उचित नहीं समझते थे। सुतराम्, बहुत कुछ वाद-विवाद के अनन्तर

यह विचार हुआ कि सीता की सोने की मूर्त्ति बनवाकर उस के साथ यज्ञानुष्ठान आरम्भ किया जाय । और,) अन्त में यही विचार स्थिर रहा ।

इस प्रकार सब बातें निश्चित करके सबसे पहले भरतजी नैमिषारण्य क्षेत्र में गये । वहाँ उन्होंने यज्ञ के लिए भूमि ठीक कराई । सब प्रान्तों के निवासियों के बैठने के लिए अलग अलग उचित स्थान बनाये गये। लक्ष्मणजी ने भी बहुत शीघ्र खाने पीने और शय्या आदि की सब सामग्री, इकट्ठा करके, वहाँ भिजवा दी । इसके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ा छोड़ दिया । उसकी रक्षा के लिए उन्होंने लक्ष्मणजी को नियत किया । इतना करके फिर उन्होंने अपनी माताओं तथा अन्यान्य कुटुम्बी जनों को साथ लेकर नैमिषारण्य क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया ।

कुछ दिन बाद, निमन्त्रित जन-समुदाय का आना आरम्भ होने लगा । सैकड़ों नरपति, नाना प्रकार के बहुमूल्य उपहार ले लेकर, अपने इष्ट-मित्रों के साथ आ आकर उपस्थित होने लगे । उनके साथ उनके सैकड़ों सेवक भी आये । यज्ञोत्सव देखने के लिए वहाँ सहस्रों ऋषि मुनि जन आकर उत्सव की शोभा बढ़ाने लगे । असंख्य नर-नारी, क्या नगर-निवासी और क्या राष्ट्र-वासी, सब नैमिषारण्य में आकर इकट्ठे होने लगे । भरत और शत्रुघ्न ने राजा लोगों के सत्कार करने का भार ग्रहण किया; विभीषण ऋषि-मुनियों की परिचर्या में नियुक्त किये गये और

शेष समस्त दर्शकों का सत्कार करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी के परम प्रिय मित्र सुग्रीव नियत हुए।

इधर यह सब यज्ञोत्सव का आयोजन हो रहा था; और उधर कुश तथा लव की बारह वर्ष की आयु हो जाने पर सीताजी की शोचनीय दशा देख महर्षि वाल्मीकिजी के मन में बड़ी चिन्ता रहने लगी। वे सोचने लगे कि यदि कुछ दिन तक सीता की यही दशा रही तो यह अधिक दिन नहीं जीवेगी; और राजाधिराज के पुत्र हो कर कुश-लव का भी इस प्रकार तपोवन में रहना उचित नहीं है। धनुर्वेद और राजधर्म के सीखने का इनका समय निकला जा रहा है। इस लिए अब शीघ्र कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे पुत्रों के सहित सीता को रामचन्द्रजी ग्रहण करलें; या और उपाय सोचने से क्या? किसी शिष्य के द्वारा रामचन्द्रजी के पास समाचार भेजदूँ और उनको यहीं बुला कर, या मैं ही इन सब को वहीं ले जाकर, उनसे इनके ग्रहण करने के लिए स्वयं प्रार्थना करूँ। मुझे आशा है, रामचन्द्रजी अवश्य मेरे कथन को मान जायँगे। इसी प्रकार, मन में अच्छी तरह सोच विचार कर वाल्मीकिजी कुछ देर चुप हो कर मन में फिर चिन्ता करने लगे। वे कहने लगे कि रामचन्द्रजी बड़े लोक-प्रिय हैं। प्रजावर्ग की प्रसन्नता के काम करने में उन्हें बड़ा स्नेह है। उन्हों ने प्रजा-रञ्जन के लिए ही, पूर्ण-गर्भ की अवस्था में, निरपराधिनी सीता को घर से निकाल दिया है। इन सब बातों को देखते हुए

मुझे सन्देह है कि वे मेरी बात मानेंगे या नहीं। जो हो, उन्हें कुछ भी संवाद न दे कर योंही चुप बैठ रहना भी उचित नहीं। यही दोनों बालक उत्तरकाल में गद्दी पर बैठेंगे। इस समय पिता के पास न जा कर नीति-शास्त्र की शिक्षा न ग्रहण करेंगे तो राज-काज-सञ्चालन में चतुर कैसे होंगे। ऐसा होने पर राजा रामचन्द्र कदाचित् मुझको ही दोषी बनाने लगें और यह समझने लगें कि इन्होंने कोशल-राज्य का हित-साधन नहीं किया। इसलिए, अब इस विषय में और अधिक सोच-विचार करना व्यर्थ है। अब रामचन्द्रजी के पास यह सब समाचार भेजना ही समुचित है। अथवा पहले सीधा उनके पास संवाद न भेज कर वशिष्ठजी और लक्ष्मण से इस विषय में सम्मति लेनी चाहिए। देखें, वे क्या कहते हैं।

एक दिन सायङ्काल के समय संध्या और अग्निहोत्र की विधि समाप्त करके वाल्मीकिजी आसन पर बैठे हुए इसी चिन्ता में मग्न हो रहे थे कि इतने में ही अयोध्या के राजदूत ने एक पत्र लाकर महर्षि के हाथ में दिया। वह पत्र श्रीरामचन्द्रजी ने भेजा था और उस पर "राम" लिखा हुआ था। अश्वमेध यज्ञ के लिए वह निमन्त्रण-पत्र था। पत्र पढ़कर महर्षि ने बड़ी प्रसन्नता से दूत को विश्राम करने के लिए वहाँ से बिदा किया। शिष्यों से उनके खान-पान का सब प्रबन्ध कराकर वे मन में कहने लगे—मैं जिस बात की इतनी भारी चिन्ता कर रहा था, दैव ने कृपा करके उसकी

सिद्धि का यह अच्छा उपाय कर दिया। अब तो बिना प्रार्थना के ही काम हो जायगा। कुश और लव को अन्य शिष्यों के साथ वहाँ लिवा ले जाऊँगा। रामचन्द्रजी की और इनकी सूरत को समान देख कर लोग समझ ही जायँगे कि ये अवश्य राजा रामचन्द्रजी के आत्मज हैं। स्वयं रामचन्द्रजी भी इन्हें देखकर अवश्य मोह से द्रवीभूत हो जायँगे। ऐसा होने से हमारी अभीष्ट-सिद्धि का द्वार उन्मुक्त हो जायगा। फिर हमारा सब काम सिद्ध हो जायगा।

मन में इसी प्रकार निर्धारण करके महर्षि वाल्मीकिजी सीताजी की कुटी में गये। वहाँ जाकर कहने लगे—वत्से, राजा रामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ करके हमारे पास यह निमन्त्रण-पत्र भेजा है। हम कल सबेरे वहाँ को प्रस्थान करेंगे। मेरे जी में है और मैं चाहता हूँ कि अन्य शिष्यों के साथ तुम्हारे दोनों पुत्रों को भी यज्ञ में ले जाऊँ। सुनते ही सीताजी ने 'बहुत अच्छा' कहा। महर्षि वाल्मीकि ने वहाँ से अपनी कुटी में जाकर सब शिष्यों को बुलाया और उनसे कहा कि देखो, अब तक तुम लोगों ने कोई नगर नहीं देखा है; रामायण के नायक राजा रामचन्द्रजी अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं सो मैं चाहता हूँ कि वहाँ तुम लोगों को भी ले चलूँ। यज्ञ-दर्शन के साथ ही साथ तुमको राजा का दर्शन भी हो जायगा। वहाँ के दर्शक-गण को देख कर तुमको बहुत कुछ लौकिक वृत्तान्त भी विदित हो जायगा।

उन दोनों राजकुमारों ने रामायण में श्रीरामचन्द्रजी की अलौकिक कीर्त्ति पढ़ रक्खी थी और वे श्रीरामचन्द्र को महा-पुरुष समझ कर उनमें बड़ी भक्ति और श्रद्धा रखते थे। उनके प्रत्यक्ष दर्शन होने का समाचार सुन कर राजकुमारों के आनन्द की सीमा न रही। उन्हें यह जान कर अपार आनन्द हुआ कि यज्ञ में रामायण के नायक राजा रामचन्द्रजी के दर्शन होंगे। यज्ञ और तत्रागत नर-नारियों के दर्शनों की प्रबल इच्छा से उनके हृदय में आनन्द-सागर उमड़ने लगा।

वाल्मीकिजी के मुख से अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का नाम सुनकर सीताजी का शोकानल प्रबल वेग से प्रज्वलित हो उठा और उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। कुछ देर बाद सीताजी के शरीर में बिजली सी कौंध गई। उनका भाव एकदम बदल गया। उनको विश्वास था कि मुझ पर श्रीरामचन्द्रजी का अपार प्रेम है; और वे यह भी निश्चय समझती थीं कि उन्होंने अवश होकर मेरा त्याग किया है। किन्तु यज्ञानुष्ठान की बात सुन कर सीताजी के जी में यह विश्वास हो गया कि अवश्य उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया होगा। क्योंकि वे जानती थीं कि बिना स्त्री के यज्ञ नहीं हो सकता। यही सोच कर सीताजी के अन्तःकरण में प्राण निकलने के समान पीड़ा हुई। एक तो अकारण त्यागी जाने पर सीताजी को शोक हो ही रहा था और दूसरे, द्वितीय विवाह की बात जी में सोचकर उनके दुःख की सीमा न रही।

अकारण निर्वासित होने पर सीताजी के जी में यह सोचकर धैर्य बँधा रहा था कि उन्होंने प्रजा-रञ्जन के लिए मेरा परित्याग कर दिया; उनके जी में मेरे विषय में स्नेह, प्रीति, दया और ममता सब पूर्ववत् ही हैं। इसी विश्वास से उनका धैर्य नहीं टूटा था परन्तु, अब उनका वह विश्वास नहीं रहा। उनको निश्चय हो गया कि अब श्रीरामचन्द्रजी का मेरे विषय में वह अलौकिक स्नेह और अनुराग नहीं रहा, जो पहले था।

इसी प्रकार तर्क-वितर्क करती हुई सीताजी अपने मन में चिन्ता कर ही रही थीं कि इतने में कुश और लव उनकी कुटी में आकर कहने लगे—माताजी, आज महर्षिजी ने कहा है, कि कल तुमको भी राजा रामचन्द्रजी का अश्वमेध यज्ञ देखने के लिए लिवा ले चलेंगे। जो दूत अयोध्या से निमन्त्रण-पत्र लेकर आया है, उसके पास जाकर हमने रामचन्द्रजी के विषय में बहुत सी बातें पूछ ली हैं। हम देखते हैं, रामचन्द्रजी के सभी काम बड़े अलौकिक होते हैं। किन्तु माताजी, एक बात हमको बड़ी मोहित कर रही है और हमें अचंभे में डाल रही है। रामायण के पढ़ने से उन पर हमारी जितनी भक्ति हुई थी, वह भक्ति और श्रद्धा इस समय सहस्रगुनी बढ़ गई। बातों बातों में हमने सुना कि उन्होंने प्रजा-रञ्जन के लिए अपनी प्रेयसी रानी को घर से निकाल दिया है। यह सुन कर हमने उससे पूछा कि जब उन्होंने अपनी प्यारी रानी को

वनवास दे दिया तो यज्ञ-कार्य कैसे होगा ? क्योंकि यज्ञानुष्ठान में स्त्री के रहने की बड़ी आवश्यकता होती है। तब उस दूत ने कहा कि उनके गुरु वशिष्ठजी ने दूसरा विवाह करने के लिए उन्हें सम्मति देकर वहुत कुछ आग्रह किया था, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी दूसरा विवाह करने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा। अब उन्होंने सोने की सीता बनवा कर तैयार करवाई है। उसी सुवर्ण-मूर्ति के द्वारा यज्ञ-कार्य का निर्वाह करेंगे। देखो माताजी, ऐसा कोई दूसरा मनुष्य भूमण्डल पर नहीं, जैसे रामचन्द्रजी हैं। जिस प्रकार वे राजधर्म का पालन करने में दत्तचित्त हैं, उसी प्रकार दाम्पत्य-प्रेम को भी बराबर निभाते चले जाते हैं। हमने इतिहास-ग्रन्थों में अनेक राजाओं और अनेक महापुरुषों के वृत्तान्त पढ़े हैं, परन्तु कोई भी राजा रामचन्द्रजी के समान नहीं। प्रजा की प्रसन्नता के लिए परम प्यारी रानी को निकाल देना और फिर आयु भर दूसरा विवाह न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा, ये दोनों काम अभूतपूर्व हैं। ऐसा व्यापार हमने न कभी देखा, न सुना। जो हो, माताजी, जबसे हमने रामायण पढ़ी थी तब से ही हमारे जी में यह इच्छा थी कि एक बार उन रामचन्द्रजी का दर्शन अवश्य करना चाहिए। सो इस समय उस इच्छा के पूर्ण होने का अच्छा सुयोग मिला है। आप आज्ञा दें तो हम महर्षिजी के साथ जाकर श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करें। सीताजी ने जाने की आज्ञा

दे दी। माता की आज्ञा पाकर दोनों सहोदर भाई महर्षिजी के पास गये।

श्रीरामचन्द्रजी के दूसरे विवाह की आशंका करके सीताजी के हृदय में जो विषम वेदना हो रही थी और जिसके चिन्तानल से सीताजी का सारा शरीर भस्म हुआ जाता था, उसकी वह सारी वेदना और चिन्ता सुवर्णमयी मूर्त्ति की बात सुन कर दूर हो गई। उनका चिर-सञ्चित शोक भी बहुत कुछ घट गया। उस समय मारे हर्ष के सीताजी के नेत्रों से वारि-धारा बह निकली; और निर्वासित होने का जो क्षोभ उनको हो रहा था वह सब दूर हो गया। उनके हृदय में अनुपम सौभाग्य-गर्व उदय हो गया।

अगले दिन, प्रातःकाल होने पर, कुश और लव आदि शिष्यों को साथ लेकर महर्षि वाल्मीकिजी ने नैमिष क्षेत्र के लिए प्रस्थान कर दिया। दूसरे दिन वे मध्याह्न समय वहाँ पहुँच गये। वाल्मीकिजी को और उनके शिष्यों को वशिष्ठदेव आदरपूर्वक उनके ठहरने के स्थान में लिवा ले गये। दूर से ही श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करके कुश और लव के शरीर पुलकित हो गये। उन्हें देख कर वे आपस में कहने लगे—देखो भाई, रामायण में हमने जैसी कीर्ति इनकी पढ़ी है वैसे ही ये साक्षात् अलौकिक गुणों की मूर्त्ति हैं। देख लो, अलौकिक सद्‌गुणों के एक मात्र आधार यही हैं। इनमें जैसा सौम्य भाव है, वैसा ही गाम्भीर्य भी है। जिस प्रकार हमारे गुरुजी अलौकिक कवित्व-शक्ति-सम्पन्न हैं

उसी प्रकार ये भी अलौकिक सद्गुणों के मन्दिर हैं। क्या कहना है! यदि ऐसे महापुरुष को नायक मान कर भगवान् गुरुदेव काव्य-रचना न करते तो उनके काव्य की इतनी प्रतिष्ठा और गुरुता न होती। राजा रामचन्द्रजी के अलौकिक गुणों का कीर्त्ति-गान करने से गुरुदेव ने अपनी कवित्व-शक्ति को सार्थक कर लिया। गुरुजी की कविता-शक्ति भी सर्वोत्तम और कथा के नायक महापुरुष भी सर्वोत्तम। जो हो, आज हमारे नेत्र सफल हो गये।

धीरे धीरे जब सब निमन्त्रित जन वहाँ आगये तब ठीक समय पर यज्ञ का आरम्भ हुआ। कितने ही दीन दरिद्र अपनी अपनी प्रार्थना करते हुए यज्ञक्षेत्र में आ उपस्थित हुए। श्रीराम-चन्द्रजी की ओर से मनमाना दान होने लगा। अन्नार्थी को अन्न, धनार्थी को धन और भूमि चाहनेवाले को भूमि का दान किया जाने लगा। सारांश यह कि जिस अभिलाष से जो मनुष्य वहाँ आया, उसका वही मनोरथ तत्क्षण पूरा किया गया। चारों ओर निरन्तर गाना बजाना होने लगा। सब दर्शक मनोहर वेश-भूषा से सजे हुए थे। सब के मुखारविन्द आमोद और प्रमोद से खुले हुए थे। किसी का मुख मलिन नहीं था। वहाँ पर बड़ी बड़ी आयुवाले जो राजा और ऋषि लोग आये थे वे सब कहने लगे कि हमने ऐसा यज्ञ आज तक कहीं नहीं देखा। भूतकाल की बात जाननेवाले लोग भी यही कहते थे कि किसी राजा ने कभी ऐसी समृद्धि, समारोह और ऐसी धूमधाम से कोई यज्ञ

नहीं किया। राजा रामचन्द्र के सब कार्य अद्भुत और अनुपम ही होते हैं।

इस प्रकार प्रति दिन बड़ी धूमधाम से यज्ञकार्य होने लगा। आगत जन सब इकट्ठे होकर यज्ञोत्सव की धूमधाम का दर्शन करने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

एक दिन महर्षि वाल्मीकि एकान्त में बैठ कर सोचने लगे कि इतने दिन यज्ञ देखने में हमने योंही लगा दिये। आज तक उस मनोरथ की सिद्धि के लिए कोई उपाय नहीं निकाला। अस्तु, इस समय किस ढंग से कुश और लव को रामचन्द्रजी के दृष्टिगोचर कराऊँ ? एक बार इन दोनों सहोदर भाइयों के साथ राजसभा में जाना चाहिए, अथवा किसी प्रकार रामचन्द्रजी को यहाँ बुलाना चाहिए, और एकान्त में उनसे वे सब बातें कह देनी चाहिएँ तथा कुश-लव को दिखा कर सीता के ग्रहण करने के लिए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। महर्षि वाल्मीकि ने, इसी प्रकार मन में तर्क-वितर्क करके, अन्त में यह निश्चय किया कि कुश और लव के द्वारा रामायण-काव्य का गान कराया जावे। जब वे जगह जगह गान करेंगे तब राजा के भी दृष्टिगोचर होही जायँगे। फिर वे अपना चरित्र सुनने के लिए, इन्हें अपने समीप अवश्य बुलावेंगे। ऐसा हो जाने पर प्रार्थना के विना ही काम बन जायगा।

यही सोच कर महर्षि वाल्मीकिजी ने कुश और लव को अपने पास बुला कर कहा—वत्स कुश, वत्स लव, अब से

तुम दोनों भाइयों को एक साथ मिल कर वीणा बाजे के साथ रामायण को गाकर सुनाना होगा। तुम दोनों भाई प्रसन्नमन होकर स्वर के साथ, ऋषि-मण्डली के आगे, राजा लोगों के डेरों में जा जाकर और पुरवासी तथा अन्यान्य राष्ट्रनिवासी सज्जनों के डेरों में जा जाकर उनको रामायण सुनाओ। एक दिन नहीं, अब से प्रति दिन सुनाया करो। यदि तुमको बुला कर राजा गाना सुनाने के लिए आग्रह करें तो तुम तत्क्षण गाना सुना देना। राजा के समीप जितने समय तक रहो वहाँ किसी प्रकार की धृष्टता या कुचेष्टा मत करना। राजा सब का पिता होता है। इसलिए तुम लोग भी उनके साथ पुत्र के समान बर्ताव करना। यदि संगीत सुन कर राजा प्रसन्न हो तुमको कुछ धन देने लगें तो तुम उसे ग्रहण मत करना। नम्रता और भक्ति के साथ निर्लोभता दिखा कर धन लेने के लिए अपनी अनिच्छा ही प्रकट करना। उनसे कहना कि महाराज, हम वनवासी हैं, तपोवन में रह कर वन के फल, मूल द्वारा अपना निर्वाह कर लेते हैं; हमें धन से क्या प्रयोजन है। और यदि राजा तुम्हारा परिचय प्राप्त करना चाहें, तुम्हारा वृत्तान्त पूछने लगें, तो तुम केवल यही कह देना कि हम वाल्मीकिजी के शिष्य हैं।

इस प्रकार आदेश और उपदेश देकर महर्षि वाल्मीकि तो चुप हो गये और उन दोनों ने महर्षि की आज्ञा को शिरोधार्य करके वीणा लेकर जगह जगह रामायण का गान आरम्भ कर दिया।

जो उस गान को सुनता वही मोहित और निश्चेष्टभाव से आँखों से आँसू गिराने लगता। ऐसा होना ही चाहिए था। क्योंकि पहले तो श्रीरामचन्द्रजी का परम पवित्र और विचित्र चरित्र; दूसरे महर्षि वाल्मीकि की अनुपम रचना-प्रणाली का चमत्कार; तीसरे कुश और लव के रूप-लावण्य को देखते ही दर्शक जन मोहित हो जाते थे; और तिस पर भी उनका स्वर ऐसा मधुर था कि उसके सामने कोकिल-स्वर भी कर्कश प्रतीत होता था; चौथे वीणा बजाने में वे ऐसे प्रवीण और सिद्धहस्त थे कि वैसा बजाने-वाला किसी ने कभी न देखा और न सुना था। वहाँ कोई ऐसा मनुष्य नहीं था जिसे, उनका गान सुन कर, अलौकिक आनन्द न आया हो।

कुछ देर बाद, कितने ही मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के समीप जाकर कहने लगे—महाराज, दो सुन्दर ऋषिकुमार वीणा बाजे के साथ आपका चरित्र गान करते हैं। जो सुनता है, वही मोहित हो जाता है। आपने भी कभी ऐसा मधुर गान न सुना होगा। वे दोनों जोड़िया भाई हैं। महाराज, हमने मनुष्यों में उनका सा सौन्दर्य्य किसी का नहीं देखा। स्वर की मधुरता की तो बात ही न पूछिए, किन्नर भी सुन कर लज्जित होते हैं। वे जिस काव्य को गाकर सुनाते हैं, वह न जाने किसकी रचना है। किन्तु ऐसी अभूतपूर्व, ललित और मधुर रचना हमने पहले कभी नहीं देखी सुनी। महाराज, हमारी यही प्रार्थना है कि आप उनको बुलाइए और राज-सभा में उनसे गाना सुनिए।

आप उनको देख कर और उनका गाना सुनकर निःसन्देह मोहित हो जायँगे।

सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी के अन्तःकरण में उनका गाना सुनने के लिए बड़ी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। उनको बुलाने के लिए उन्होंने झट एक ब्राह्मण भेज दिया। राजा के यहाँ बुलाये जाने का समाचार पाते ही वे दोनों भाई बड़ी नम्रता से राज-सभा में चले आये। उन को देखते ही श्रीरामचन्द्रजी के हृदय में एक अनिर्वचनीय और अपूर्व भाव का आविर्भाव हुआ। उनके समस्त शरीर में एकदम किस रस का सञ्चार हुआ--प्रीतिरस का या विषादरस का ? कुछ समझ में नहीं आया। कुछ देर, भ्रान्तचित्त की तरह, वे उन दोनों कुमारों को अनिमेष दृष्टि से देखते रहे। उनकी भी समझ में कुछ नहीं आया कि यह हमारा भाव किस कारण बदल गया, इसलिए वे चित्र के समान कुछ देर योंही बैठे रहे।

दोनों कुमार, धीरे धीरे उनके पास जाकर "महाराज की जय हो" कह कर, उचित आसन पर बैठ गये। बैठ जाने पर उन्होंने बड़ी नम्रता से पूछा—महाराज, आपने हमें किस प्रयो-जन से बुलवाया है ? कुमारों के पास आ जाने पर श्रीराम-चन्द्रजी, उनके शरीर में अपने और सीताजी के लक्षणों को देख कर, बड़े ही चकित और चमत्कृत हुए। उस समय सभा में बहुतेरे सज्जन बैठे हुए थे, इसलिए वे बड़ी कठिनता और चतुराई से अपने भाव को ढक कर कहने लगे—सुना जाता है

कि तुम बहुत अच्छा गाना गाते हो। जो सुनता है, वही मोहित हो जाता है। सभी तुम्हारे गाने की प्रशंसा कर रहे हैं, इसलिए मैं भी तुम्हारा गाना सुनना चाहता हूँ। यदि तुम चाहो तो प्रसन्नता से कुछ गाना सुना दो। उन्होंने कहा—महाराज, हम जिस काव्य को गाते हैं वह बहुत बड़ा है। उसमें महाराज का चरित विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। आज्ञा दीजिए, इस समय हम उस काव्य में से कौन सा अंश गावें।

कुश और लव के रूप को और उनके शरीर में अपने तथा सीताजी के रूप का प्रतिबिम्ब देख कर श्रीरामचन्द्रजी का मन चञ्चल हो उठा। यही नहीं, किन्तु सीताजी का वियोगानल भी पुनः प्रज्वलित हो उठा। वे उस समय इतने चलायमान और अधीर हो गये कि और धैर्यावलम्बन करने में असमर्थ हो गये। उस समय वे एकान्त स्थान में जाने की इच्छा से शीघ्र सभा समाप्त हो जाने की इच्छा करने लगे। इसलिए उन्होंने कुमारों से कहा कि आज तो जहाँ से चाहो वहीं से कुछ सुना दो, फिर कल से प्रति दिन थोड़ा थोड़ा गा कर तुम हमें पूरा काव्य सुना देना। "जो आज्ञा" कह कर उन्होंने गाना बजाना आरम्भ कर दिया। समस्त सभ्य लोग गाना सुन कर उन्हें साधुवाद देने लगे। कवि की पण्डिताई और रचना-लालित्य को देख कर श्रीरामचन्द्रजी पूछने लगे—यह काव्य किसका रचा हुआ है ? तुमने ऐसा अच्छा गाना बजाना किससे सीखा है ? उन्होंने उत्तर दिया—महाराज, इस काव्य के रच-

यिता महर्षि वाल्मीकिजी हैं। और हम उन्हीं के आश्रम में रहते हैं, इसलिए हमने जो कुछ सीखा है, सब उन्हीं से सीखा है। तब श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि महर्षि वाल्मीकिजी ने इस काव्य में अपनी कवित्व-शक्ति का अच्छा प्रदर्शन किया है। बड़ी अच्छी रचना की है। बड़ा अद्भुत काव्य रचा है। रोचक तो इतना बना दिया है कि थोड़ा बहुत सुनने से तृप्ति ही नहीं होती। तुमने बहुत परिश्रम किया है; अब हम तुमको अधिक कष्ट नहीं दे सकते। तुम लोग अपने स्थान को जाओ।

इस प्रकार कह कर उन दोनों भाइयों को बिदा करके श्रीरामचन्द्रजी ने उस दिन शीघ्र ही सभा भङ्ग करदी। वे अलग एकान्त स्थान में जाकर मन में सोचने लगे कि, इन दोनों कुमारों को देख कर हमारा हृदय इतना व्याकुल क्यों हो गया, कुछ समझ में नहीं आया। अपनी सन्तान को देख कर, जो भाव हमने पिता के अन्तःकरण में होता सुना है, इन्हें देख कर उसी भाव का हमें अनुभव हो रहा है। परन्तु ऐसा होने का कारण समझ में नहीं आता। ऐसा हो ही कैसे सकता है। मैंने जिस दशा में, जैसी निर्दयता के साथ, सीता को घर से निकाला था, उसका ध्यान करता हूँ तो मुझे निश्चय होता है कि दुःख से, शोक से और लज्जा तथा अपमान से सीता ने कभी के प्राण छोड़ दिये होंगे। लक्ष्मण के चले आने पर उन्होंने तुरन्त आत्महत्या करली होगी, अथवा किसी हिंस्र जीव ने खा डाला होगा। ऐसे घोर विपत्काल में उनका जीता रहना, सुख से

सन्तान का उत्पन्न करना और फिर मन लगा कर उनका लालन-पालन करना कभी सम्भव नहीं प्रतीत होता। मैं अपने भाग्य की ओर देखता हूँ तो ऐसा होने की कोई सम्भावना नहीं पाता। मेरे ऐसे अच्छे भाग्य कहाँ जो ऐसा हुआ हो।

इतना कह कर श्रीरामचन्द्रजी बड़े अधीर हो आँखों से आँसू गिराने लगे। फिर शोक के वेग को रोक कर कहने लगे—किन्तु उनके आकार और चेष्टा को देखने से यही प्रतीत होता है कि वे अवश्य क्षत्रिय हैं। हमारे शरीर के अधिकांश लक्षण उनके शरीर में मौजूद हैं। उनकी सूरत बिलकुल हमारी सूरत से मिल जाती है। ध्यान से देखने पर स्पष्ट मालूम होता है कि सीता के भी चिह्न उनके शरीर में हैं। आँखें, नाक, कान, होठ, ठोड़ी—जिसे देखो उसी में कुछ भेद नहीं मिलता। क्या इतनी समानता का दृष्टान्त यों ही परमात्मा ने उत्पन्न कर दिया है? और वे कहते हैं, कि हम वाल्मीकि के आश्रम में रहते हैं। मैंने भी सीता को उसी तपोवन में छोड़ने के लिए लक्ष्मण से कहा था। सम्भव है, महर्षि वाल्मीकि दया करके सीता को अपने आश्रम में लिवा ले गये हों और वहीं ये दोनों जोड़िया पुत्र उत्पन्न हुए हों। लक्षणों से तो यही प्रतीत होता है। उस समय सीता के लक्षण भी ऐसे ही थे कि जैसे यमज गर्भवती के हुआ करते हैं। इन बातों को सोचते हैं तो हमारी आशा निर्मूल नहीं हो सकती। नहीं नहीं, मैं मृग-तृष्णा की तरह व्यर्थ अपने को कष्ट में डाल रहा हूँ। मैं व्यर्थ दुःखी हो रहा हूँ। जब

मैंने ऐसी निर्दयता और कठोरता से, राक्षसों की तरह, वैसी पतिव्रता कामिनी को—सर्वथा निरपराध होने पर भी—वनवास दिया था तब ऐसी आशाओं का करना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? हा प्रिये, तू ऐसी साधुशीला और भोली भाली होकर कैसे निर्दयी और कठोरहृदय के पाले पड़ गई। हा ! जब मैंने तुझ जैसी पतिपरायणा, साधुशीला और शुद्धाचारिणी को भी अनायास वन में निकाल दिया तब संसार में मुझसे अधिक और कौन पापी और पाषाण-हृदय होगा !

इसी प्रकार शोक और विलाप करते करते श्रीरामचन्द्रजी अचेत से हो गये और उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। थोड़ी देर में जब अधीरता कुछ कम हुई तब कहने लगे—मालूम होता है, वाल्मीकिजी सीता को अपने आश्रम में लिवा ले गये होंगे और वहीं उनके ये दोनों जोड़िया पुत्र हुए होंगे। अवश्य ऐसा ही हुआ होगा; इसमें सन्देह नहीं। ये दोनों भाई वास्तव में ऋषि-कुमार नहीं हैं। इस बात का एक प्रमाण पाया जाता है। इनका आकार देखने से विदित होता है कि इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। इस समय इनकी आयु बारह वर्ष से अधिक नहीं है। मालूम होता है, कि ग्यारहवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ है। ये क्षत्रिय-कुमार न होते तो ग्यारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत क्यों होता ? यदि ये वास्तव में ऋषि-कुमार होते तो महर्षि वाल्मीकि आठवें वर्ष में ही इनको उपनीत कर देते। इसके सिवा, दूसरी बात यह है

कि उपनीत ब्राह्मणकुमार की जो वेष-भूषा हुआ करती है, वैसी वेष-भूषा इनकी नहीं मालूम होती। इनका तो सारा ढंग क्षत्रिय-कुमारों के समान है। यदि ये क्षत्रिय-कुमार हैं तो बहुत करके यही सम्भव है कि ये सीता के ही पुत्र हैं; और किसी के नहीं। कारण यह है, कि और किसी क्षत्रिय-सन्तान को वन में रहने और वहाँ उपनयन-संस्कार कराने की आवश्यकता ही क्या थी? अवश्य ये मुझ जैसे अभागी पिता की सन्तान हैं, नहीं तो इनकी यह दशा क्यों होती।

मनही मन इसी प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे—यदि प्यारी जानकी अभी तक जीती जागती है, और ये दोनों कुमार हमारी ही सन्तान हैं, तो यह बड़े ही आनन्द का विषय है। ऐसा है तो प्यारी फिर मुझे आनन्दित करेगी—इस बात को सोच कर मेरा शरीर आनन्द में पुलकित हुआ जाता है। उस समय फिर सीता-सम्मिलन की बात स्थिर करके वे कहने लगे—इस चिरवियोग के बाद जब सीता के साथ प्रथम-सम्मिलन होगा तब मैं आनन्द में अवश्य अधीर हो जाऊँगा; और प्यारी भी अवश्य आनन्द-सागर में मग्न हो जायगी। पहले पहल मिलने पर दोनों ही आनन्द के आँसू बहावेंगे। कुछ देर तक इसी चिन्ता में मग्न रह कर, श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी आँखों से आनन्द के आँसू पोंछे। फिर तुरन्त ही उनके जी में यह चिन्ता उठ आई और वे सोचने लगे कि हा! मैंने उसके साथ बड़ी कठोरता और निर्दयता का वर्ताव किया है। अब मैं कौनसा मुँह लेकर उससे मिलूँगा। अथवा इस बात की

चिन्ता नहीं करनी चाहिए; क्योंकि सीता बड़ी सरलहृदया, साधुशीला और दयावती है। वह अवश्य मेरे अपराध को क्षमा कर देगी। मैं देखते ही स्वयं क्षमा-प्रार्थना कर लूँगा। फिर वे यह सोचने लगे, कि मैंने सीता को घर से इसी कारण निकाल कर वन में पहुँचा दिया था कि पीछे प्रजा मेरी निन्दा न करे। परन्तु, यदि, अब फिर उसे ग्रहण करता हूँ तो प्रजा फिर कहां निन्दा न करने लगे। फिर वही बात आगे आवेगी। प्रजा अवश्य बुरा समझेगी। ऐसा होने पर, विरहाग्नि का वह सब दुःख व्यर्थ हो जायगा जो कि अब तक मैंने और मेरी प्यारी ने सहन किया है।

इस प्रकार सोच कर, निरुपाय होने से श्रीरामचन्द्रजी के मुँह की शोभा जाती रही। थोड़ी देर में क्रुद्ध होकर वे कहने लगे—अब मैं निर्मूल लोक-निन्दा की कुछ पर्वा न करूँगा। अब भी प्यारी के ग्रहण करने पर यदि प्रजा असन्तुष्ट रहेगी तो बनी रहे। अब मैं उनकी बात न मानूँगा। मैं अपने इच्छानुसार करूँगा। राज्यपद पर आरूढ़ होकर मेरे समान और कौन आत्मवञ्चन करेगा। मैंने प्रजा की प्रसन्नता के लिए कोई काम नहीं उठा रक्खा। तिस पर भी यदि प्रजा असन्तुष्ट रहे तो रहे। मुझे प्यारी को वनवास देना ही उचित न था। अब मैं अवश्य अपनी प्राणप्यारी को ग्रहण करूँगा; नहीं तो भरत को राज्य का भार सौंप कर प्यारी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में चला जाऊँगा। प्रिया के विरह में राज्य भोगने से उसके साथ वन में वास करना कई गुना अधिक सुखदायक है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

आठवाँ परिच्छेद

महर्षि वाल्मीकि ने श्रीरामचन्द्रजी के जीवन-वृत्तान्त के आधार पर एक अद्भुत काव्य रचा है; उनके दो शिष्य बड़े मधुर स्वर से उस काव्य को गाते हैं और कल प्रातःकाल राजसभा में जाकर वही दोनों कुमार उसे गावेंगे; यह समाचार नैमिषक्षेत्र में आये हुए सब लोगों को मालूम हो गया। प्रातःकाल होने पर, क्या ऋषिगण, क्या राजा लोग और क्या अन्यान्य निमन्त्रित वर्ग, सभी गाना सुनने की लालसा से राजसभा में आने लगे। श्रीरामचन्द्रजी भी आकर राज-सिंहासन पर विराजमान हो गये। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और लङ्कायुद्ध में सहायता करने वाले सुग्रीव, विभीषण आदि सुहृद्गण कुछ राजसिंहासन के दाँयें, कुछ बाँयें, यथा-स्थान बैठ गये। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, उर्मिला, माण्डवी, और श्रुतकीर्त्ति आदि राजपरिवार की स्त्रियाँ अरुन्धती आदि ऋषिपत्नियों के साथ अलग स्थान में बैठ गईं।

इस प्रकार, सब लोग, युक्ति से अपने अपने स्थान पर बैठ कर, नूतन काव्य सुनने की उत्कण्ठा से, उन दोनों कुमारों के विषय में परस्पर नाना प्रकार की चर्चा करने लगे। सब लोग उन दोनों कुमारों के आने की बाट

जोहने लगे। इतने ही में कुश और लव को साथ लेकर महर्षि वाल्मीकिजी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देख कर सभामण्डल में बड़ा कोलाहल मचा। जिन लोगों ने पहले दिन उन कुमारों को देखा था वे उनकी ओर उँगली उठाकर अपने पास बैठे हुए लोगों से कहने लगे कि देखो, यही दोनों कुमार गानेवाले थे। जिस समय महर्षि वाल्मीकि सभा-स्थल में पहुँचे उस समय उन्हें देखकर सभा में जितने लोग बैठे थे सब उठ खड़े हुए। सब ने महर्षि के लिए अभ्यु-त्थान देकर आदर-सम्मान किया। महर्षि और उनके शिष्यों के लिए अलग स्थान पहले ही से नियत कर रक्खा गया था। वे अपने स्थान पर बैठ गये। अब सब लोग गाना सुनने की लालसा से अत्यन्त उत्कण्ठित हो कर गान आरम्भ होने की बाट देखने लगे।

कुछ देर बाद, महर्षि वाल्मीकि ने सभा में सब ओर देख कर श्रीरामचन्द्रजी से कहा—महाराज, सब लोग सुनने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। आज्ञा प्रदान कीजिए तो गाना आरम्भ किया जाय। तदनन्तर, श्रीरामचन्द्रजी की अनु-मति लेकर, कुश और लव ने वीणा के साथ गाना आरम्भ किया। महर्षि वाल्मीकिजी ने कुश और लव से पहले ही कह रक्खा था कि जिस जिस प्रसंग में राम और सीता के परस्पर प्रेम और अनुराग का वर्णन अधिक है उसी प्रसंग को आज गाना। कुश और लव ने वैसा ही

किया। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी और सीता के परस्पर प्रेम का ऐसा वर्णन किया, ऐसा गाया, कि थोड़ा सा सुनने से ही श्रीरामचन्द्रजी का हृदय द्रवीभूत हो गया। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की बूँदें टपकने लगीं। उस समय वे कुमारों की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे। उन्हें देख कर श्रीरामचन्द्रजी के हृदय में यही दृढ़ विश्वास होने लगा कि ये सीता के ही पुत्र हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी उन कुमारों की सूरत श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी से मिलती जुलती देख कर अपने मन में नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे। इनके अतिरिक्त, समस्त सभासीन लोग एक स्वर से यही कहने लगे कि, क्या आश्चर्य्य है! कैसे अचम्भे की बात है! ये दोनों ऋषिकुमार ठीक श्रीरामचन्द्रजी की सूरत के हैं। यदि वेष-भूषा और आयु में भेद न होता तो श्रीरामचन्द्रजी में और इनमें कुछ भी भेद न दिखाई देता। सब यही कहने लगे कि मानो श्रीरामचन्द्रजी ने ही कुमारावस्था के दो रूप और धारण कर लिये हैं। कुमारावस्था में श्रीरामचन्द्रजी की जैसी मोहिनी सूरत और शोभा थी वही शोभा, वही ठीक सूरत, उस समय उन दोनों कुमारों की थी। अस्तु, समस्त सभासद्गण मोहित और निश्चेष्ट होकर, गाना सुनने और अनिमेष दृष्टि से उनके रूप-लावण्य को देखने लगे।

कुछ देर में श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा—वत्स, इनको शीघ्र एक सहस्र सुवर्णमुद्रा पुरस्कार दो। पुरस्कार की बात

सुन कर वे दोनों कुमार कहने लगे—महाराज, हम वनवासी हैं; विलासी या भोगाभिलाषी नहीं। हम लोग तो जो कुछ फलमूल मात्र मिल जाता है उसी का आहार कर लेते हैं और वल्कल-वस्त्र ओढ़ते हैं। हमें सुवर्ण की आवश्यकता नहीं है। हमने बड़े यत्न और परिश्रम से आपका चरित्र पढ़ा था, सो आज आपके प्रत्यक्ष दर्शन करने से और उस चरित्र को सुनाने से हमारा श्रम सफल हो गया। आपकी प्रसन्नता से ही हम कृतकृत्य होगये।

उन बालकों की इस प्रकार की वचन-चातुरी और निर्लोभता देख कर सब लोग चकित हो गये। कुश और लव की सूरत को अच्छी तरह देखने भालने से कौशल्या के जी में भी यही समा गया कि हो न हो ये सीता के ही पुत्र हैं। यह सोच कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। "हा वत्से जानकि," कह कर वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उनकी यह दशा देखकर सबको बड़ा अचम्भा और दुःख हुआ। सबने मिलकर उनको सचेत किया। कुछ देर तक गाना सुनने के बाद सभी के हृदयों में सीता-वियोग का शोकानल प्रज्वलित हो उठा। इस कारण, सब कोई अधीर हो गये। सब की आँखों से आँसू टपकने लगे और सब के सब लम्बी साँस छोड़ने लगे। कौशल्या बड़ी अधीर होकर कहने लगीं—कोई इन दोनों कुमारों को मेरे पास बुलादे तो एक बार इन्हें अपनी गोद में बिठा कर इनका मुख तो चूम लूँ। ऐसा करने से, मेरे जी में से जानकी का दुःख बहुत कुछ कम हो जायगा। यह देखो न, इनके सब

अंग, सब लक्षण हमारे राम और सीता के समान हैं। जिस समय ये सभा में आये थे उसी समय न जाने किसने मेरे कानों में कह दिया था कि ये दोनों कुमार तुम्हारे राम के ही वंशधर हैं। तभी से इनके लिए मेरे प्राण उछल रहे हैं। अब बारह वर्ष के बाद सीता को मैं बहुत कुछ भूल गई थी, परन्तु इन्होंने मेरे हृदय में फिर जानकी-शोक नया कर दिया। हा वत्से जानकि, तू कहाँ है? तेरी क्या दशा है? तू अब तक जीवित है, या इस पापी-लोक को छोड़ कर परलोक सिधार गई? कुछ समझ में नहीं आता। यह कह कर कौशल्या फिर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। सबने मिलकर फिर जैसे तैसे उनकी मूर्च्छा दूर की। चेत में आकर कौशल्या बड़ी विकल होकर कहने लगीं—अब तुम इन दोनों को मेरे पास शीघ्र बुलादो; नहीं तो कोई जाकर लक्ष्मण से ही कह दो। वही इन दोनों को लाकर मेरी गोद में बिठा दे।

कौशल्या की इस प्रकार अस्थिरता और कातरता देख कर पास ही बैठी हुई अरुन्धती ने एक दासी को लक्ष्मण के पास भेजा। उसने जाकर कौशल्या की सारी दशा लक्ष्मणजी को सुना दी। उस समय लक्ष्मणजी ने अपनी चतुराई से सभा शीघ्र भंग कर दी। सभा बन्द होने पर वे उन कुमारों को कौशल्या के पास ले गये। उन्हें गोद में बिठा कर कौशल्या बार बार उनके मुँह चूमने लगीं। और, 'हा वत्से जानकि, तू कहाँ है'! कह कर वे बड़े ज़ोर से रोने लगीं। यह देख कर

सुमित्रा और उर्मिला सभी रोने और विलाप करने लगीं। उस रोने पीटने को देख कर कुश और लव अवाक् रह गये।

कुछ देर बाद शोक के वेग को रोक कर, कौशल्या ने अपना सन्देह दूर करने के लिए उनसे पूछा—तुम्हारा और तुम्हारे माता-पिता का क्या नाम है? उन्होंने बड़ी नम्रता से अपना नाम बता कर कहा कि मालूम नहीं, हमारे पिता कौन हैं? अब तक हमने अपने पिता को देखा भी नहीं। हाँ, हमारी माता हैं। वे तपस्विनी हैं। किन्तु हमने एक दिन भी उनका नाम अपने कानों से नहीं सुना। हमें बिलकुल मालूम नहीं कि उनका नाम क्या है। उनसे या और किसी से हमने उनका नाम कभी पूछा भी नहीं। हम महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं और उन्हीं के तपोवन में रहते हैं। उन्हीं के पास रह कर हम विद्याध्ययन करते हैं।

कुश और लव के मुँह से ये बातें सुन कर कौशल्या के हृदय से बहुत कुछ संदेह दूर हो गया। किन्तु उतने से ही उनकी पूरी तृप्ति न हुई। इस लिए वे फिर पूछने लगीं—तुम्हारी माता की सूरत कैसी है? कुश और लव ने उनकी सूरत और सब आकार-प्रकार यथावत् बतला दिये। तब तो सबके जी में यही निश्चय होगया कि ये सीता के ही पुत्र हैं। यह जान कर, कौशल्या तथा और सब राजपरिवार के हृदयों में जानकी का शोक-सागर एक बार ही उमड़ पड़ा। कुछ देर बाद कौशल्या ने उनसे पूछा कि तुम्हारी माता कैसे हैं? उन्होंने उत्तर में कहा

कि वे तो सदा जीवन्मृत सी रहती हैं। वे दिन दिन इतनी दुबली होती जाती हैं कि उनकी दशा देख कर यही अनुमान होता है कि वे बहुत दिन तक न जी सकेंगी।

कुश और लव के मुँह से उनकी माता की यह दशा सुन कर और उनकी माता को सीता ही समझ कर, सब राज-परिवार की स्त्रियाँ बड़ी अधीर हो हो कर विलाप करने लगीं। कुछ धीर बाँध कर, अपना सन्देह दूर करने के लिए, कौशल्या ने लक्ष्मणजी से कहा—बेटा! एक बार महर्षि वाल्मीकिजी को तो यहाँ बुला दे। लक्ष्मणजी ने अपनी माता की आज्ञा शीघ्र पूरी की। वे झट जाकर महर्षि वाल्मीकि को बुला ले आये। उन्हें देख कर सबने उठ कर प्रणाम किया और बड़े आदर से आसन पर बिठाया। फिर कौशल्या हाथ जोड़ कर पूछने लगीं—भगवन्! आपके ये दो शिष्य कौन हैं? कृपा करके स्पष्ट बतलाइए। तब, जिस दिन लक्ष्मणजी सीताजी को वन में छोड़ कर चले आये थे, उसी दिन से लेकर अन्त तक का सारा वृत्तान्त, महर्षि ने उनसे कह सुनाया। और, अपने प्यारे पति के वियोग से सीताजी की जैसी शोचनीय दशा हो रही थी वह सब यथावत् वर्णन कर दी। यह सुनते ही सब की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। शोक में व्याकुल हो कर कौशल्या, यह कह कर विलाप करने लगीं कि 'हा वत्से जानकि! विधाता ने तुम्हारे भाग्य में ऐसे ऐसे घोर दुःख लिख दिये थे।' अस्तु, अभी तक सीता जीती जागती हैं और ये

दोनों कुमार उन्हीं के पुत्र हैं, इसमें किसी को कुछ भी सन्देह नहीं रहा।

इतने दिन बाद, अपना सच्चा वृत्तान्त जान कर, कुश और लव के हृदय में नाना प्रकार के अनिर्वचनीय भाव पैदा होने लगे। उस समय वाल्मीकि जी ने उनसे कहा—वत्स कुश, वत्स लव, तुम्हारी दादी और चाची यहाँ बैठी हैं, इन्हें प्रणाम करो। गुरु की आज्ञा पाकर उन्होंने कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा और उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर महर्षि ने कहा—देखो, तुमने लक्ष्मण नामक जिस महापुरुष का गुण-कीर्तन पढ़ा है, वे यही हैं। ये तुम्हारे तीसरे चचा हैं। यह कह कर उन्होंने लक्ष्मणजी से परिचय करा दिया। लक्ष्मण का नाम सुनते ही उन्होंने लक्ष्मणजी को सिर से पैर तक अच्छी तरह देख कर, बड़ी प्रेमभक्ति से उनको प्रणाम किया।

कुछ देर बाद, कौशल्या ने लक्ष्मणजी से कहा—वत्स, तुम शीघ्र राम और वशिष्ठदेव को यहाँ बुला लाओ। तदनुसार लक्ष्मणजी तत्क्षण उन को अपने साथ वहाँ बुला लाये। कौशल्या ने आँखों में आँसू भर कर बड़ी गद्गद वाणी से, कुश और लव का परिचय करा दिया; और सीताजी के जीवित रहने का भी समाचार उनको सुना दिया। कुश और लव के विषय में श्रीरामचन्द्रजी को, हृदय में, जो सन्देह था वह अब दूर हो गया। उस समय श्रीरामचन्द्रजी के

कमल-नेत्रों से इतना जल गिरा कि उनका वक्षःस्थल भीग गया। वे कुश और लव को बड़ी प्रेम-दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद, कौशल्या ने पुत्रों-सहित सीता के ग्रहण करने की सम्मति दी। इस पर श्रीरामचन्द्रजी चुप रहे। उनकी चुप को स्वीकार कर, लक्षण समझ कर, कौशल्या ने महर्षि से सीता के बुलाने के लिए कहा। सुनते ही वाल्मीकिजी ने सीताजी को लाने के लिए पालकी के साथ एक अपना शिष्य भेज दिया। उन्होंने उससे कह दिया कि तुम सीता को इस पालकी में बिठा कर हमारी कुटी में ले आना।

यज्ञ में आये हुए सब लोगों को धीरे धीरे विदित हो गया कि ये जो दो ऋषि-कुमार रामायण गाते फिरते हैं, ये ऋषि-कुमार नहीं बल्कि राज-कुमार हैं। साथ ही यह भी मालूम हो गया कि जब सीताजी निकाल दी गई थीं तभी वाल्मीकिजी के आश्रम में ये पैदा हुए थे, और सीताजी अभी तक जीती जागती हैं। सबको यह भी मालूम हो गया कि श्रीरामचन्द्रजी अब सीताजी को ग्रहण करेंगे। उनके बुलाने के लिए महर्षि ने पालकी के साथ अपना शिष्य भेजा है। ये सब बातें सुन कर बहुतों को तो प्रसन्नता हुई, परन्तु कोई कोई कहने लगा—हमारे राजा बड़े अस्थिर-चित्त हैं, इनके चित्त में बड़ी अस्थिरता है; जब सीताजी को फिर ग्रहण करते हैं तब उनके त्याग करने की ही क्या आवश्यकता थी। जो जानकी तब थीं, वही अब हैं। क्या अब बदल गईं? जिस कारण से उनका परित्याग किया था वह

कारण उनमें अब भी तो है। वह कारण तो कुछ नष्ट हुआ नहीं। भाई, बड़े आदमियों की बात समझ में नहीं आती।

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी के ग्रहण करने का विचार पक्का कर लिया था, तथापि कुछ लोगों की यह सम्मति उड़ती उड़ती उनके कानों तक भी पहुँच गई। उसे सुन कर वे फिर गड़बड़ा गये। उनका चित्त फिर चलायमान हो गया। वे पहले सोचते थे कि सीता के ग्रहण करने में लोग अब कुछ आपत्ति प्रकाशित न करेंगे; परन्तु यह देख कर वे विषाद-सागर में मग्न हो गये कि अभी तक लोग सीता के चरित्र पर कलंक लगा रहे हैं और उन्हें शुद्ध नहीं समझते। अब क्या करना चाहिए, कुछ समझ में नहीं आता—इत्यादि विचारों में निमग्न हो कर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से सलाह करने लगे। बहुत कुछ वाद-विवाद के पश्चात् यही निश्चय हुआ कि सब लोगों के सामने सीता अपनी पवित्रता का प्रत्यक्ष प्रमाण दें और वह अपने को शुद्ध सिद्ध कर दें तो ग्रहण करली जायँ। अपने बड़े भाई के आज्ञानुसार लक्ष्मणजी ने यह विचार वाल्मीकिजी को भी सुना दिया।

लक्ष्मणजी के मुँह से वह बात सुनते ही महर्षि तुरन्त श्रीरामचन्द्रजी के पास पहुँचे। वहाँ जाकर महर्षि वाल्मीकिजी ने उन्हें बहुत कुछ समझाया कि सीता पवित्र हैं; उनमें किसी प्रकार का दोष नहीं है। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—भगवन्, सीता की पवित्रता के विषय में मुझे लेश मात्र भी संदेह नहीं है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सीता शुद्ध हैं, परन्तु राज्य-

भार लेकर मैं सर्वथा पराधीन होगया हूँ। आपने उपदेश किया था कि प्राण-पण से प्रजा-रञ्जन करना राजा का परम धर्म है। आप ही सोचिए, अब उस धर्म का पालन कैसे न किया जाय। इस राज-धर्म का परित्याग करने से इस लोक में निन्दा और परलोक में नरक का भागी बनना पड़ेगा। सीता के विषय में प्रजा-जनों की बड़ी विषम बुद्धि हो रही है; वे उनके चरित्र को अपवित्र समझते हैं। जब तक यह कलङ्क दूर न हो जाय मैं किस प्रकार सीता को ग्रहण कर सकता हूँ; आपही कहिए ? जिस दिन से मैंने सीता का परित्याग किया है उसी दिन से अपने सारे सुखों का भी परित्याग कर दिया। कह नहीं सकता, मैं अब तक किस प्रकार प्राण धारण कर रहा हूँ। मैंने सर्वथा परवश हो कर सीता का परित्याग किया था। एक बार मेरे जी में आया था कि यदि प्रजा-वर्ग असन्तुष्ट होते हैं तो होने दो, अवश्य सीता को ग्रहण करना चाहिए। परन्तु ऐसा करने से मैं राज-धर्म-पालन से पतित हुआ जाता हूँ। इस लिए, अब मैं सीता के ग्रहण करने का साहस नहीं करता। दूसरी बात मैंने यह भी सोची थी कि भरत को राज्य का भार देकर वानप्रस्थ आश्रम का पालन करूँ। ऐसा होने पर फिर सीता के ग्रहण करने में कोई कुछ भी न कहेगा। अन्त में, बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर यह उपाय भी श्रेयस्कर न प्रतीत हुआ। जानकी के साथ मैंने बड़ा घोर दुष्कर्म किया है, इसके लिए मैं अधर्मी हूँ। यह जन्म मेरा दुःख भोगने के लिए ही

हुआ था। इस समय मेरे चित्त में जैसा दुःख हो रहा है, इस जन्म में जो जो दुःख मैंने भोगे हैं, उन्हें मेरा अन्तरात्मा ही जानता है। यदि इसी समय मेरे प्राण निकल जायँ तो दुःखों से मेरा छुटकारा हो जाय।

इतना कह कर श्रीरामचन्द्रजी शोक में बड़े व्याकुल हुए। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। कुछ देर बाद, जब कुछ शोक घटा तब, हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता के साथ वे महर्षि से कहने लगे—भगवन्, आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि जब जानकी आ जायँ तब उन्हें ले जाकर आप सब लोगों से उनके ग्रहण करने के विषय में सम्मति लीजिएगा। यदि सब लोग उनके ग्रहण करने के लिए सम्मति प्रदान करें, उनके ग्रहण करने में किसी को भी कुछ आपत्ति न हो, तो मैं उसी समय उनको ग्रहण कर लूँगा। जो सर्व-सम्मत न हुआ, तो किसी पक्के प्रमाण से प्रजा-वर्ग का सन्देह दूर किया जायगा। यह सुन और उनकी सम्मति से सहमत होकर, वाल्मीकिजी उदास से हो अपने स्थान को चले गये।

इधर तो यह सब ऊहापोह हो रहा था, और उधर कौशल्या की भेजी हुई पालकी को देख कर और मुनि के शिष्य के मुँह से अपने बुलाने की बात सुन कर, सीताजी ने अपने मन में कहा,—जान पड़ता है, विधाता ने दया करके इतने दिन बाद अब मेरे दुःखों का अन्त कर दिया। जब पूजनीया देवीजी ने मेरे लिए पालकी भेजी है तब मेरे ग्रहण करने में सन्देह नहीं

है। इसी लिए आज मेरा वाम नेत्र फड़क रहा है। मैं आर्यपुत्र की दया, स्नेह और ममता को जानती हूँ। उन्होंने अपनी इच्छा से मेरा त्याग नहीं किया, किन्तु बिलकुल पराधीन होकर मुझे त्याग दिया था। उनके वियोग में जिस प्रकार मैं दुखी हो रही हूँ इसी प्रकार वे भी मेरे वियोग में दुखी रहते होंगे। इसमें सन्देह नहीं। मेरे विषय में यदि उनका प्रेम कुछ भी घट गया होता तो दूसरा विवाह कराने से वे विमुख न होते। उन्होंने सहधर्मिणी के स्थान में मेरी ही सुवर्णमयी मूर्ति बना कर रख छोड़ी है। यह काम करके उन्होंने मेरे साथ अपने स्नेह की पराकाष्ठा दिखादी और मेरा सारा शोक दूर कर दिया। फिर भी मुझे आर्य-पुत्र के सहवास से आनन्द प्राप्त होगा, इसका मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था।

इसी प्रकार कहते कहते, सीताजी के कमल-नेत्रों से आनन्द के आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं। उनके शरीर में पहले से कई गुना बल आ गया, चित्त में असीम स्फूर्ति और उत्साह भर गया। मेरे स्वामी मुझे फिर ग्रहण करेंगे—यह सोच कर उनका हृदय अभूतपूर्व आनन्द-सागर में हिलोरें लेने लगा। आशा बड़ी बलवती होती है। वे आशा पर सब कुछ निर्भर करके मन ही मन अनेक कल्पनायें करने लगीं। स्वामी के साथ समागम होने पर जो जो घटनायें होंगी वही सब घटनायें उनके चित्त-पट पर अङ्कित होने लगीं। उन घटनाओं का साक्षात् अनुभव सा करके उनको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने

अपने जी में समझ लिया कि मानो मैं श्रीरामचन्द्रजी के सामने खड़ी हूँ; स्वामी नीचे को मुँह किये लज्जा से कुछ कह नहीं सकते; और फिर समझने लगीं, कि मानो श्रीरामचन्द्रजी आँखों में आँसू भरे हुए प्रेम से बातचीत कर रहे हैं पर मैं बात नहीं करती। मैं अभिमान में चूर होकर मुँह बिगाड़े खड़ी हूँ। फिर वे सोचने लगीं, कि मानो पहली बार मिलने पर दोनों पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से चुपचाप देख रहे हैं और दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। फिर सोचा कि मानों एक ही आसन पर बैठे हुए दोनों अपने विरह का दुखड़ा सुना रहे हैं, बैठे ही बैठे मानो सारी रात बीत गई और सबेरा हो गया। वे फिर सोचने लगीं कि मानो मैं सासुओं के चरणों में वंदना कर रही हूँ; और वे आँखों में आँसू भरे हुए मेरा मुँह चूम रही हैं। मुझे दुबली पतली देख कर वे बड़ा विलाप कर रही हैं। फिर सोचा कि मानों एकान्त में बैठी हुई मैं सासुओं के साथ बातचीत कर रही हूँ। इतने में ही देवर आगये हैं और 'आर्ये! प्रणाम करता हूँ' कह कर उन्होंने मुझे प्रणाम किया है। फिर उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मानो, मेरी बहनों ने आकर मुझे प्रणाम किया है। मानो सब मिल कर परस्पर विलाप और परिताप करती हुई आँखों से आंसुओं की धारा बहा रही हैं। फिर उनके जी में यह कल्पना होने लगी कि मानो सोने की सीता अलग कर दी गई और मैं ही स्वामी के बाईं ओर बैठ कर यज्ञ में सहधर्मिणी का काम करने लगी हूँ।

इसी प्रकार अनेक प्रकार की कल्पना और भावना करते करते सीताजी आनन्द के साथ पालकी में सवार हो गईं। अगले दिन, सायङ्काल के समय, पालकी नैमिष क्षेत्र में जा पहुँची। पहुँच जाने पर वाल्मीकिजी ने सीताजी से कहा—वत्से ! राजा रामचन्द्र तुम्हारे ग्रहण करने के लिए सन्नद्ध हो गये हैं। कल सभा में जब सब लोग इकट्ठे होंगे तब मैं सब के सामने तुमको रामचन्द्रजी के हाथ में सौंपूँगा।

वाल्मीकिजी को पूरा विश्वास था कि जब मैं सीताजी को ग्रहण करने के लिए प्रस्ताव करूँगा तब सभा में कोई चूं न करेगा इस कारण उन्होंने यह सोचा भी नहीं कि इनकी शुद्धता के लिए कोई आवश्यक प्रमाण देना होगा या नहीं। तदनन्तर, जानकी ने एकान्त में जाकर कुश और लव से ब्यौरेवार सब बातें पूछीं। पूछने पर, उनको अपने ग्रहण किये जाने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहा। वे अपने स्वामी से मिलने के हर्ष में ऐसी उत्सुक और अधीर हुईं कि रात काटनी भारी होगई। सारी रात उनकी पलक तक न झपी। वे यही मनाती रहीं कि कब प्रातःकाल हो और कब स्वामी के दर्शन हों।

रात बीत जाने पर, प्रातःकाल की नित्य-क्रियाओं से निवृत्त हो कर वाल्मीकिजी सीता, कुश, लव तथा अन्यान्य शिष्यों को साथ ले सभा-मण्डप में पहुँचे। सीताजी का शरीर उन दिनों बहुत दुबला था। उनकी कृशता को देखकर श्रीरामचन्द्रजी के हृदय में भारी चोट लगी। सीताजी की शोचनीय दशा देख

कर उनको उस समय बड़ा ही दुःख हुआ। उस शोक के वेग को वे बड़ी कठिनता से रोक सके। और सोच विचार कर, चिन्ता में मग्न हो चुपचाप बैठे रहे कि न जाने आज प्रजा कैसा बर्ताव करेगी। सीताजी को देख कर सभी के जी में दया का सञ्चार हुआ। सीताजी को बहुत दुबली पतली देख कर सभी को दुःख हुआ। वाल्मीकिजी आकर आसन पर भी न बैठे। वे आते ही खड़े होकर ऊँचे स्वर से कहने लगे—"इस सभा में इस समय नाना देशों के राजा लोग, कोशलराज्य के प्रधान प्रधान प्रजावर्ग, और सहस्रों पुरवासी तथा राष्ट्रवासी जन-समुदाय इकट्ठे हैं। तुम सब लोगों को यह विदित ही है कि राजा रामचन्द्रजी ने प्रजा के निर्मूल लोकापवाद को सुनकर, और लोक-निन्दा से डरकर, सर्वथा निरपराधिनी जानकी को घर से निकाल दिया था। मैं इस समय सबसे अनुरोध करके कहता हूँ कि तुम लोग सीताजी को ग्रहण करने के लिए प्रसन्नता से अनुमोदन प्रकाशित करो। सीताजी की शुद्ध-चरित्रता के विषय में कोई मनुष्य कभी सन्देह नहीं कर सकता।" वाल्मीकिजी के इतना कह चुकने पर सभा में बड़ा कोलाहल मचा। वाल्मीकिजी के चुप होजाने पर कितने ही राजा और प्रधान प्रधान लोग खड़े होकर हाथ जोड़ करके कहने लगे—हम लोग शुद्ध हृदय से निवेदन करते हैं कि यदि श्रीमान् राजा रामचन्द्रजी महाराज इस समय सीताजी को ग्रहण करलें तो इससे अधिक हमारी क्या प्रसन्नता हो सकती है। किन्तु कुछ लोग नीचे को

मुँह किये चुपचाप बैठे रहे । श्रीरामचन्द्रजी उस समय बड़े सन्देह में बैठे थे। उन्होंने देख लिया कि साधारण लोग सीता को ग्रहण करने में सहमत नहीं हैं। इसलिए वे बड़े उदास और दु:खित होकर वाल्मीकि जी के मुँह की ओर देखने लगे। अगत्या, निरुपाय होकर, वाल्मीकिजी ने सीताजी से कहा—वत्से, तुम्हारे विषय में लोगों को जो सन्देह हो गया है वह अभी तक दूर नहीं हुआ। इसलिए तुम अपने आप, अपनी शुद्धता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण देकर इनके सन्देह को दूर करो। वाल्मीकिजी के दहिनी ओर खड़ी हुई सीताजी मन में सोच रही थीं कि अब मेरे स्वामी मुझे ग्रहण करेंगे। परन्तु वाल्मीकिजी के मुँह से यह बात सुनते ही वे इस तरह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं जिस तरह प्रचण्ड वायु के वेग से लता गिर पड़ती है।

अपनी माता की दशा देखकर कुश और लव भी अधीर होकर रोने लगे। श्रीरामचन्द्रजी अब तक प्रजा-पुञ्ज की प्रीति-कामना से धीरज बाँधे बैठे थे; किन्तु सीताजी को पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ी देख कर और कुश तथा लव के रोदन को सुनकर उनका भी धीरज उड़ गया। वे, हा प्रेयसि, कहकर, शोक में विह्वल और मूर्च्छित हो सिंहासन से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़े। कौशल्या देवी भी शोक में विह्वल हो, 'हा वत्से जानकि' कह कर मूर्च्छित होगईं। सीताजी की बहनें भी शोकाग्नि से भस्म होती हुईं 'हाय! क्या हो गया' कह कर भयङ्कर रोदन करने

लगीं ! यह सब रोदन और हाहाकार देख कर सभा में जितने मनुष्य उपस्थित थे वे सब निश्चेष्ट हो चित्र की तरह बैठे रहे। यद्यपि भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी शोक में अत्यधिक व्याकुल थे तथापि जैसे तैसे धीरज धर कर वे अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजी महाराज की मूर्च्छा दूर करने का उपाय करने लगे। कुछ देर में, प्रयत्न करने पर उनकी मूर्च्छा दूर हो गई। वाल्मीकिजी ने सीताजी की मूर्च्छा दूर करने और उनको सचेत करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न किये, पर सब निष्फल गये। उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ गया। कुछ देर में उनको समझ पड़ा कि सीताजी मानवलीला संवरण कर गईं।

सीताजी बड़ी सुशीला और सरलस्वभावा थीं। उनके समान पतिव्रता स्त्री कभी कोई नहीं देखी सुनी गई। उन्होंने अपने पवित्र चरित्र से पतिपरायणता और पतिभक्ति के गुणों की पराकाष्ठा दिखादी। ज्ञात होता है कि, विधाता ने, मानवजाति को पतिव्रता-धर्म का उपदेश देने के लिए ही सीताजी को उत्पन्न किया था। यह नहीं सुना गया कि उनके समान सर्वगुणसम्पन्न कोई नारी कभी भूमण्डल में जन्मी हो, अथवा उनके समान सर्वगुणसम्पन्न होकर, और सर्वगुणसम्पन्न पति को प्राप्त होकर कभी कोई स्त्री उनके समान दुःखभागिनी हुई हो।